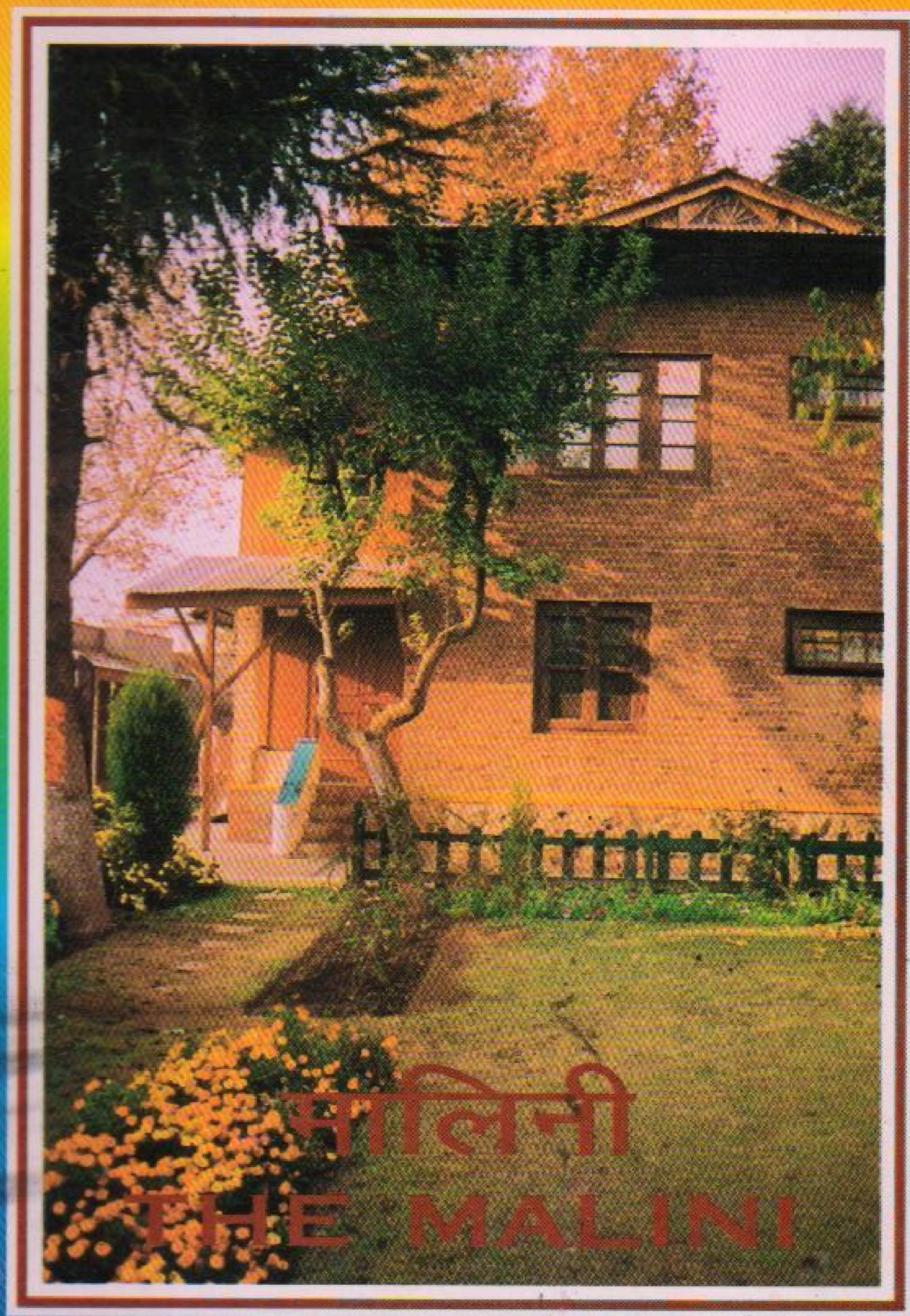


OCTOBER, 2000



ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR



मालिनी THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union
with her all the treatises of non-dualistic
order achieve the nature of divine potency.*

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :

Sri Inderkrishan Raina

(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar

Sri Brijnath Kaul

Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :

Sushri Prabhadevi

Prof. Nilakanth Gurtoo

Prof. Makhanlal Kukiloo

Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan

*(I.A.S. Retd.) Co-ordination***Publishers :**

Ishwar Ashram Trust

Ishber (Nishat), Srinagar

Kashmir.

Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Tel. : 553179, 555755

Branch Office :

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044

Tel. : 6943307

Telefax:6955611

October, 2000

Price : Rs. 20.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust

by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

सम्पादक की लेखनी से

4

1. Śiva Sūtras

Svāmī Lakṣmaṇa Joo

Mahārāja

6

2. A Prayer to Amṛteśvara

Svāmī Lakṣmaṇa Joo

12

Mahārāja

3. Theism in Indian Philosophy

Dr. B.N. Pandit

17

4. पराशक्तिस्तव

आचार्य महेश्वर जू राजदान

22

5. अनुभव सौरभम्

आचार्य अभिनवगुप्तवाद

24

Tr. Dr. Betina Baumer

6. नमः श्रीसंवित्प्रभायै

आचार्य पं० रामेश्वर झा

भाषानुवादक - डा० परमहंसमिश्र 25

7. तन्त्र-रहस्य का महत्त्व

सुश्री प्रभादेवी

31

8. शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकण्ठ गुर्दू

34

9. शैवाचार्य श्रीनागार्जुनरचित

वी. एन. जोत्शी (भट्ट)

चित्तसन्तोषत्रिशिका

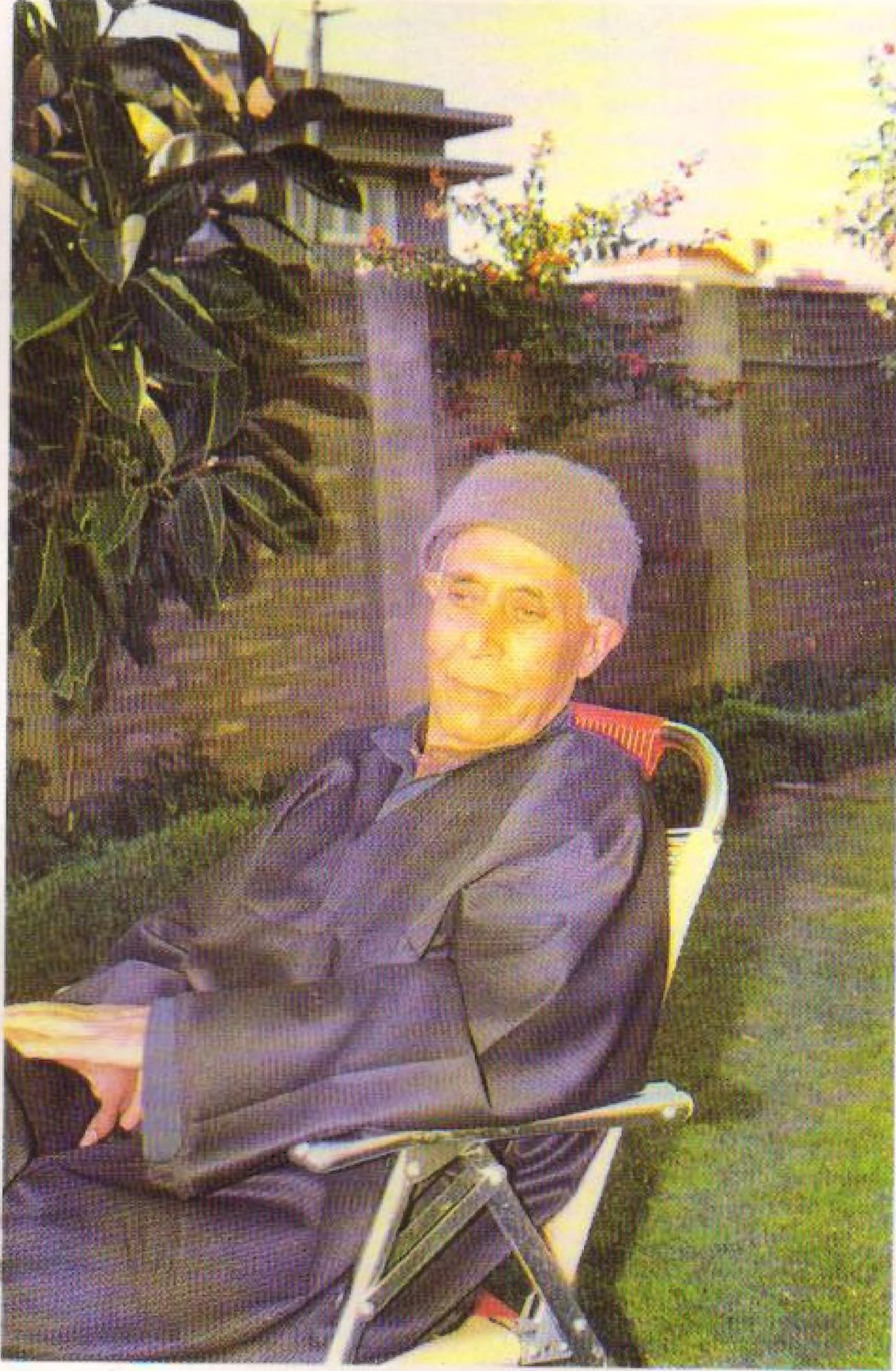
36

10. From Ashram Desk

Administrative Office

39

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस

9-5-1907

महासमाधिदिवस

27-9-1991

संपादक की लेखनी से

मालिनी का यह बाईसवां अंक प्रस्तुत करते हुए हमें महान् प्रसन्नता हो रही है। इस अंक की महत्ता इस लिए अधिक है कि यह सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती के आसपास प्रकाशित हो रहा है। यह जयन्ती हमें उनके प्रति गहरी श्रद्धा, अटूट निष्ठा और अदम्यभावना को पुनः उत्तेजित कर कर्मक्षेत्र में जूझने के लिए प्रोत्साहित करती है। हमारे मन व मस्तिष्क पर पड़े कालुष्य के आवरण को हटा कर उसे प्रकाशमान बनाती है, भौतिक चमचमाहटों से परे रखकर आध्यात्मिक स्पन्दन का आविर्भाव करती है जिससे सहनशीलता और स्थिरता का आभास अनायास ही होने लगता है तथा महाविभूति की शीतलता मलत्रय व तापत्रय से विमुक्त करती है। निर्वाण जयन्ती की यह गरिमा सद्गुरु महाराज की मधुर-स्मृति में संजीवनी औषधि का काम करती है, जीवन में मधुरता, चैतन्यता और जीवन्तता का पुनः संचार करती है, कर्मक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बनाकर जी जान से जुट जाने का सन्देश देती है, जन-जीवन के मानस में अजस्रशक्ति का स्रोत प्रस्फुटित करती है, मोक्षामृत भागीरथी में अवगाहन कराके तन मन से हमें पवित्र व पुनीत करती है और सर्वांगीण विकास के परिप्रेक्ष्य में आत्मिक उन्नति से उज्ज्वल बनाती है। सद्गुरु महाराज के रूपरस गहरे आनन्द सागर में डुबकी लगाने को प्रेरित करते हैं, तथा नीचे तल में प्राप्त अमर मुक्तामणियों को लोक सम्पत्ति मानकर उनको मनप्रांगण में बिखेरने को आकुल बनाते हैं, ताकि जनमानस की पारखी नजरें उन्हें पहचानें और काट-तराश कर अपने अन्तस्तल में सुरक्षित रखें। हम आज के इस पुनीत पर्व पर शपथ लें कि रूढ़िवाद, संकीर्ण सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद सीमितक्षेत्रवाद और जातिवाद को तोड़ते हुए “वसुधैव कुटुम्बकम्” के पथ पर निर्भय होके हम सद्गुरु महाराज के निर्दिष्ट साधना मार्ग पर धीरे-धीरे अग्रसर होवें, ताकि प्राणिवर्ग स्वार्थमयी सामाजिक कुप्रवृत्तियों से बचता हुआ शान्ति और मानव कल्याण के लिए सद्गुरु महाराज की गौरवमयी भूमिका को समझ सकें और ज्ञान के इस वट वृक्ष के नीचे बैठकर आत्म-विश्लेषण अथवा आत्ममन्थन कर सकें। यदि ऐसा होगा तो सद्गुरु परिवार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना दायित्व सफलता पूर्वक निभाने में सशक्त कदमों और सुदृढ़ विश्वास से अग्रसर होगा। जय गुरुदेव।

सन् २००० की निर्वाण जयन्ती, दिल्ली तथा इसके आस-पास रहने वाले गुरुभक्तों गुरुप्रेमियों और मन्त्रदीक्षितों के लिए विशेष महत्त्व की है क्योंकि पहली बार यह जयन्ती हमने अपने नवनिर्मित आश्रम परिसर में धूमधाम से मनाई। उपस्थित अपार जनसमुदाय

ने जिस उल्लास और भक्तिभाव को दिखाया वह सराहनीय है। प्रधान केन्द्र श्रीनगर में सैंकड़ों भक्तों ने सामयिक प्रतिकूल परिस्थितियों के होने पर भी दिन भर यज्ञपूजा पाठ में सम्मिलित होकर अपने श्रद्धासुमन सद्गुरु चरणों में अर्पित किये। जम्मू महेन्द्रनगर का ईश्वर आश्रम भवन भी प्रातःकाल से ही भक्तों की भीड़ से खचाखच भर गया। वहां भी यज्ञ पूजा पाठ में हजारों गुरुभक्तों, शिष्यों और गणमान्य व्यक्तियों ने भाग लिया। प्रसाद प्राप्ति से अन्त में तीन चार हजार लोगों ने अपने को कृतकृत्य समझा। इस प्रकार सद्गुरु महाराज की इस भक्ति लहर ने ऊँच-नीच के बन्धनों को तोड़कर समरसता की भावना को उजागर किया।

“इस बात से आप लोग परिचित हैं कि दक्षिण दिल्ली सरिता-विहार स्थित ईश्वर आश्रम भवन ८०% तैयार हो गया है। आशा है कि नववर्ष के आरम्भ में यह शतप्रतिशत सम्पूर्ण होगा। हम उन महानुभावों के आभारी हैं जिन्होंने इस महायज्ञ में दिल खोलकर अपनी आहुति डाली और सारे आसपास के वातावरण के साथ अपने को भी सुरभिमय बनाया। हमें आशा है कि इस महायज्ञ में पूर्णाहुति पड़ने तक भक्तों तथा दानवीरों के अदम्य उत्साह में किसी प्रकार का शैथिल्य देखने को नहीं मिलेगा।

समस्त गुरुपरिवार तथा ईश्वराश्रम परिवार को दीपावली की मंगलमय कामनायें।

जय गुरुदेव

दीपावली

प्रो० मखनलाल कुकिलू

कार्तिक कृष्ण अमावसी

२६ अक्टूबर, २०००



ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāj

(continued from last issue)

अथ द्वितीय उन्मेषः।

Now second awakening

इदानीं शाक्तोपायः प्रदर्श्यते—Now Śāktopāya is explained तत्र शक्तिः मन्त्रवीर्यस्फाररूपाः—Śakti means that energy which is not ordinary, but this is expansion of Mantra Vīrya or commentary of I-consciousness, इति प्रथमोन्मेषान्त सूत्रित तत्स्वरूप विवेचन-पुरः सरमुन्मेषान्तरं आरभमाणो मन्त्र स्वरूपं तावत् निरूपयति—so in the end of first awakening he has pointed out that मन्त्रवीर्य, (Mantravīrya) because he wanted that this, मन्त्रवीर्य to be fully exposed, fully commentated in this second awakening, so to explain the actual state of मन्त्रवीर्य in this second awakening of Śivasūtras, first he places the explanation of Mantra:—

चित्तं मन्त्रः

cittam mantrah

Here (i.e. in Śāktopāya) by intensive awareness the mind of a yogi becomes mantra or mind is Mantrah.

चेत्यते-विमृश्यते अनेन परं तत्त्वम् इति चित्तं—पूर्ण स्फुरत्ता सतत्त्व प्रासाद-प्रणवादि विमर्शरूपं संवेदनम्; तदेव मन्त्र्यते—गुप्तं अन्तर् अभेदेन विमृश्यते परमेश्वररूपं अनेन इति कृत्वा मन्त्रः। अतएव च (म इति) परस्फुरत्तात्मक मनन धर्मात्मता, (त्र इति) भेदमय संसार प्रशमनात्मक त्राण धर्मता च अस्य निरुच्यते।

चेत्यते-विमृश्यते—which ponders over, अनेन—by this, परंतत्त्वं—the highest Reality, इति चित्तं—citta is that, पूर्णस्फुरत्ता सतत्त्व प्रासाद प्रणवादि विमर्शरूपं संवेदनं—It is, in other words, विमर्श रूपं—consciousness, संवेदनं—that ponders over. प्रासाद (it is a technical word of Trika philosophy, It is the name of “सौः” Mantra, प्रणव—the Śaiva Pranava which is हुं, आदि—etc. पूर्णस्फुरत्ता सतत्त्व—which are of the form of the perfect I-consciousness. तदेव— that citta itself, is मन्त्रः—Mantra. मन्त्र्यते विमृश्यते गुप्तं—by which one ponders

secretly, अन्तर अभेदेन—inwardly being one with परमेश्वररूप—the Lord. अतएव—therefore, अस्य निरुच्यते—the etymological explanation of Mantra points to मननः—(म इति) परस्फुरत्तात्मक मनन धर्मात्मता—deliberating over the highest light of I-consciousness, (त्र इति भेदमय संसार प्रशमनात्मक त्राण धर्मता)—त्राण धर्मता—त्र means protection by प्रशमनात्मक—terminating the, भेदमय संसार—world full of difference.

There are two sections of mind, both are supreme or Divine. Ist section of mind is a thought of sacred world. Second section of mind is sacred thought of an aspirant. Who is practising in the way. चित्तं—that thought is said to be exposition of मन्त्र—means sacred world. The rise of words in internal mind of an aspirant is also mantra because he is fully purified in worldly and outwardly.

Mind does not mean mind. It means that you become aware of supreme consciousness. So that mind is said to be when yourself is exposed to your fullness that is विमर्श—consciousness is two ways. प्रासाद मन्त्र “सौः” is called the मन्त्र of external flow, प्रणवमन्त्र is the Mantra of external and internal flow. External flow in internal world and internal flow in external world. First is अहम्, when it takes place it is external flow. Second is महअ, when it takes place it is internal. When अहं takes place, it is coming out of your supreme God-consciousness to objective God consciousness. When you rise to objective God-consciousness with your subjective God consciousness that is महअ. These are the states of प्रणव। But प्रासाद is state of sacred word “सौः”. It is only external. It is rising inside and outside. It is both ways rising. It is only a kind of rising. It is not of falling. This is supreme rise. Thus when it is one way rising it is the expansion of सौः, When both ways you rise that is प्रणव.

State of चित्त-thought will be said to be मन्त्र, because it is not written, it is secret. It moves in secret world. One who recites this with consciousness in one's own self, he sees this whole universe as his own expansion the expansion of Lord Śiva. This way is known as coming out from inside to external world. This is प्रासाद।

So it is said that this is मन्त्र। मन+त्र। मनन means focussing your mind to God consciousness and त्र means it protects one from all sides or from all bad effects or from all outside sins.

अथ च मन्त्र देवता विमर्श परत्वेन प्राप्त तत्सामरस्यं आराधक चित्तमेव मन्त्रः नतु विचित्र वर्ण संघट्टना मात्रकम्। यदुक्तं श्रीमत्सर्वज्ञानोत्तरे—

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा न मन्त्रांश्चापि तान्विदुः।

मोहिता देवगन्धर्वा मिथ्याज्ञानेन गर्विताः॥ इति॥

अथ च—Now it is explained in another way, मन्त्रदेवता विमर्श परत्वेन—intent on too much awakens of the deity, inherent in the Mantra, प्राप्त तत्सामरस्यं—gets identity with that deity, आराधक चित्तमेव मन्त्रः—and thus that mind of aspirant is मन्त्र—Mantra, नतु—not, विचित्र वर्ण संघट्टनामात्रकं—a mere conglomeration of various letters, यदुक्तं—as is explained, श्रीमत्सर्वज्ञानोत्तरे—in Sarvajñānottara.

उच्चार्यमाणा ये मन्त्रा—those Mantras which are recited with lips, नमन्त्रांश्चापितान्विदुः—those are not really mantras, देवगन्धर्वा—deities and Gandharvas are great souls, मोहिता—they are deluded in this matter, मिथ्याज्ञानेन—with the pride of false knowledge, गर्विताः—elated.

Now it is explained in another way. The mind of an aspirant, intent too much on awareness of the deity, inherent in the Mantra, gets identity with that deity and thus that mind of aspirant is Mantra, not a mere conglomeration of various letters. As is said in Sarvajñānottara that those mantras are not really mantras which are recited with lips. Elated with the pride of false knowledge Devas and Gandharvas are deluded in this matter. Mantras are in divine nature in the mind of aspirant coming out from God-consciousness to objective God-consciousness and from objective God-consciousness to subjective God-consciousness.

श्री तन्त्रसद्भावेऽपि—in Tantrāsadbhāva also it is said:—

मन्त्राणां जीवभूता तु या स्मृता शक्तिरव्यया।

तया हीना वरारोहे निष्फला; शरदभ्रवत्॥

मन्त्राणां—of all Mantras, जीवभूता—the life or the soul, या—who, स्मृता—

considered, शक्तिः—power or energy, अव्यया—imperishable, वरारोहे—o fair one (Parvati), तया हीना—without her, निष्फलाः—all those mantras are useless, शरदभवत्—just like the clouds of Autumn producing no rain.

In Tantrasadbhāva it is said that the life of mantras is that imperishable energy known as Śakti of supreme I consciousness and without that energy all those collection of words, namely “Om Namaḥ Śivāya” or other collection of sacred words are not mantra at all. They are as useless as the clouds of Autumn which come and go without producing any rain.

श्री श्रीकण्ठीयसंहितायां तु—In Śrī Kaṇṭhī-Saṁhitā, it has been said:—

पृथङ्मन्त्रः पृथङ्मन्त्री न सिद्ध्यति कदाचन।
ज्ञानमूलं इदं सर्वं अन्यथा नैव सिद्ध्यति॥

पृथङ्—different is, मन्त्रः—mantra, पृथङ्—different is, मन्त्री—the practiser of mantra, न कदाचन—will never be, सिद्ध्यति—successful, ज्ञानमूलं—this knowledge of the supreme I consciousness is the root, इदं सर्वं—of all this, अन्यथा—without it नैव सिद्ध्यति—the mantra will not be successful.

One who recites mantra for the sake of realizing God will never attain the reality of God-consciousness. One thing he should remember that he should be awake of flow of God-consciousness i.e. coming out from subjective God consciousness to objective consciousness and again from objective consciousness to subjective consciousness. Without this type of knowledge a mantra will never be successful. Thus the knowledge of divine I-consciousness alone is the root of all this.

एतच्च स्पन्दे इति भङ्ग्या प्रतिपादितम्—the same idea has been explained in Spandakārikā also in another way:—

सहाराधकचित्तेन तेनैते शिवधर्मिणः॥

सहाराधक चित्तेन—together with the mind of their devoted practisers the mantras, तेनैते शिव धर्मिणः—therefore have the characteristic of Śiva.

The Mantras together with the mind of devoted aspirant have the characteristic of Śiva i.e. the mantras are endowed with the qualities of Śiva.

अस्य च—of this mantra

प्रयत्नः साधकः॥ २॥

Prayatnah sādhaḥ

The cause of attaining this mantra is one's own effort. Or for such a yogi continued effort to be with attentive God-consciousness.

यथोक्तरूपस्य मन्त्रस्य अनुसंधित्सा, प्रथम उन्मेष अवष्टम्भ प्रयतनात्मा अकृतको यः प्रयत्नः स एव साधकः—मन्त्रयितुः मन्त्रदेवता तादात्म्यप्रदः।

यथोक्तरूपस्य मन्त्रस्य—the mantra already explained in first awakening अनुसंधित्सा—the desire for quest of the spirit of the mantra प्रथमोन्मेष—the initial emergence of, अवष्टम्भ—the firmly taking hold of अकृतको —natural, यः प्रयत्नः—close application, स एव—it is this application, साधको—मन्त्रयितुः—the reciter of mantra, मन्त्रदेवता—lord of mantra for whom you recite mantra, तादात्म्यप्रदः—effective in bringing identity of the reciter of mantra with the deity inherent in it.

The mantra, already explained in first awakening and its effort to just begin with some moment and hold that moment there with awareness, the very first start of this moment is effective in uniting the reciter of mantra and the deity inherent in it.

तदुक्तं श्रीतन्त्रसद्भावे—this is explained in Tantrasadbhāva also:—

आमिषं तु यथा खस्थः संपश्यञ्शकुनिः प्रिये।

क्षिप्रमाकर्षयेत् यत् वत् वेगेन सहजेन तु॥

तद्वदेव हि योगीन्द्रो मनो बिन्दुं विकर्षयेत्।

यथा शरो धनुः संस्थो यत्नेनाताड्य धावति॥

तथा बिन्दुर्वरारोहे उच्चारणैव धावति॥ इति

आमिषं—a piece of meat, यत् वत्—just like खस्थः—roaming in sky, संपश्यन्—observes, शकुनिः—a bird or vulture, प्रिये—O Pārvalī, क्षिप्रं—immediately, आकर्षयेत्—draws it towards itself, वेगेन सहजेन तु—with natural force, तद्वदेव हि—in the same way, योगीन्द्रो—the great yogi, मनो—his mind, बिन्दुं—to the light of the self, विकर्षयेत्—should draw forth यथा—just like, शरो—an arrow, धनुः संस्थो—placed on the string of bow, यत्नेन—with effort,

आताड्य—after expanding, धावति—runs after the target, तथा—similarly, बिन्दुः—the light of the self or that Supreme Prakāśa, वरारोहे—o fair one (Pārvatī) उच्चारेणैव—in one flight or through excessive awareness, धावति—runs after.

O Pārvatī! just like a bird or a vulture, roaming in the sky, wherever observes a piece of meat, he attentively with force holds that piece of meat, in the same way the great yogi should draw forth his mind to the light of the self.

Just like an arrow is placed on the string of bow and is sent to any corner after expanding it, in the same way that Bindu—that Supreme Prakāśa is attained through excessive awareness in one flight.

अन्यत्रापि—it is said at another place also :—

तद्ग्रहो मन्त्रसद्भावः—

the knowledge of awareness is the state of mantra. इति।

अत्र हि तद्वत् इति, अकृतक निज उद्योगबलेन योगीन्द्रः मनः (कर्म) बिन्दुं विकर्षयेत्= पर प्रकाशात्मतां प्रापयेत् इति। तथा बिन्दुः—परप्रकाशः, अकृतक उद्यन्तृतात्मना उच्चारेण धावति प्रसरति इत्यर्थः। एतच्च स्पन्दे इत्यनेन उक्तम्—

अयमेवोदयस्तस्य ध्येयस्य ध्यायिचेतसि।

तदात्मता समापत्तिः इच्छतः साधकस्य या॥

अत्र हि—in this verse, तद्वत् इति—like that, अकृतक—natural, निज उद्योग बलेन—absolutely spontaneous from the centre of the heart, योगीन्द्रः—the great yogi, मनः—mind (कर्म) (should be taken as objective case (द्वितीया विभक्ति) बिन्दुं—to supreme Prakāśa, विकर्षयेत्—पर प्रकाशात्मतां प्रापयेत्—draws the mind to the highest light of supreme I consciousness तथा—than, बिन्दुः पर प्रकाशः—bindu the highest light of self, अकृतक उद्यन्तृतात्मना—by natural active effort of विमर्श (thought) or उच्चारेण—through excessive awareness धावति प्रसरति इत्यर्थ—means runs or expands. एतच्च स्पन्दे इत्यनेन उक्तं—the same idea has been expressed in the following verse of Spandakārikā:—

अयमेव—this only is the manifestation, in the meditator's mind, of that object of meditation the willing practiser gets unified with that self.

(To be continued)

A PRAYER TO AMṚTEŚVARA – UNIVERSAL GOD

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāj

द्वारेशा नवरन्ध्रगाः हृदयगो वास्तुर्गणेशो महान्
शब्दाद्या गुरवः समीरदशकं त्वाधारशक्त्यात्मकं।
चिद्देवोऽथ विमर्शशक्ति सहितः षाड्गुण्यमंगावलि—
लोकेशाः करणानि यस्य महिमा तं नेत्रनाथं स्तुमः॥
विगलति भवदौर्गत्यं मोक्षश्रीः श्रयति हृत्कजंकचति।
प्रसरति परमानन्दो यत्र तदीशार्चनं जयति॥

*Dvāreśā navarandhragāḥ hṛdayagovāsturganeśo mahān
śabdādyā guravaḥ samīradaśakam tvādhāraśaktyātmakam /
ciddevo'tha vimarśaśaktisahitaḥ ṣaḍguṇyamaṅgāvali-
rlokeśāḥ karaṇāni yasya mahimā taṁ netranāthaṁ stumaḥ //
vigalati bhavadaurgatyaṁ mokṣaśrīḥ śrayati hṛtkajankacati /
prasarati paramānando yatra tadīśārcanam jayati //*

तं नेत्र नाथं स्तुमः

taṁ netra nāthaṁ stumaḥ

I bow to that *netranātha* (Amṛteśvara); *netranātha* means "who is fond of third eye, who is always desiring for third eye. I bow to that *netranātha* (Amṛteśvara). This is one form of Lord Śiva where predominance is there for the third eye. The third eye produces nectar. It does not produce only fire. It produced fire only when the Lord of Love कामदेव was to be burned. Otherwise, it always produces nectar. Who is fond of that third eye, I bow to Him.

यस्यमहिमा

yasya mahimā

Now who's (*mahimā*) glamour ? The glamour of His body is as follows;

द्वारेशा नवरन्ध्रगाः

Dvāreśā navarandhragāḥ

navarandhragāḥ means the 'nine openings of the body'. Generally we say that there are nine openings of the body. One is openings and the other is organ. e.g., we say 'the organ of eye'. It is not the organ of eye, it

is the opening of the organ of eye. The organ of eye is something else. This ear is not the organ of ear. It is the opening of the organ of ear. The nose is the opening of the organ of the nose.

These nine openings are called *navarandhragāḥs*. He (Amṛteśvara) does not have this kind of body, but He has body. These nine openings indicate the nine द्वारेण—“doorkeepers” of His body. Actually He does not have nine openings as we do. His nine openings are nine doorkeepers. Doorkeepers are the nine incarnations of Gaṇeśa. Doorkeeper of Lord Śiva is Gaṇeśa. So the doorkeepers of His body are the nine incarnations of Dvāreśā (Gaṇeśa).

हृदयगो वास्तुर्गणेशो महान

hṛdayago-vāsturganeśo mahān

And the real Gaṇeśa, His *gaṇapati*, His son is *hṛdayago*, in His heart, is the indication of His heart. Lord Śiva does not have a heart. But in place of the heart He has Gaṇeśa, Gaṇeśa means His son. And this Gaṇeśa is *vāstur* which means the director of *vāstu devatās* which are one hundred gods in number. He resides in His heart. Whose heart? Amṛteśvara's heart.

शब्दाद्या गुरवः

śabdādyā guravaḥ

Now in place of *śabda*, *sparśa*, *rūpa*, *rasa*, and *gandha*, the five sensations of the senses, sound, touch, form, taste and smell. In His universal body these five, *śabda*, *sparśa*, *rūpa*, *rasa*, and *gandha*, are not actually these five because He is not hearing, seeing, touching, etc. because He has nothing to do with these. But in place of these are *guravaḥ* the five incarnations of Masters and these five sections of Masters indicate in His body *śabda*, *sparśa*, *rūpa*, *rasa*, and *gandha*. And these classes of Masters are *caryā siddha*, *melāpa siddha*, *yoga siddha*, *śākta siddha*, and *śāmbhava siddha*.

The first section of Masters are *caryā siddha* Masters. *Caryā* is that kind of action by which you enter into God Consciousness. For instance you smell, you taste, whatever you do you will be directed into God

Consciousness. This is the way caryā works in the supreme body of Lord Śiva. *Caryā* takes the place of *śabda*.

Sparśa goes to *melāpa*. *Melāpa* means the union of siddha and yoginī. When siddhas and yoginīs are united it becomes *melāpa*. The union of both supreme super sexes, this is Śakti and Śiva.

Rūpa goes to yoga siddha. *Rūpa* is one pointedness. Yoga siddhas are those siddhas who have attained the state of God Consciousness by yoga.

Rasa goes to śākta siddha. Śākta siddhas are those siddhas who are all around merged in *śāktopāya*. They are absolutely merged in *śāktopāya*. These siddhas have mastered *śāktopāya* therefore these siddhas are called śākta siddhas.

Gandha goes to śāmbhava siddhas. Smell is just recognition. Smell indicates recognition. When you recognize your own nature that is śāmbhava siddha. Those Masters are śāmbhava siddhas who just are established in the cycle of *pratyabhijñā* (recognition).

So *śabda*, *sparśa*, *rūpa*, *rasa*, and *gandha*....in place of these in Amṛteśvara's spiritual body there are five classes of Masters.

समीरदशकं त्वाधारशक्त्यात्मकं

samīradaśakam tvādhāraśaktyātmakam

Ādhāraśakti is that energy of *kuṇḍalinī* which is residing in His *mūlādhāra cakra*. This is not the formation of breath there in Amṛteśvara's body. For us it is the formation of breath. When *kuṇḍalinī* rises in us it takes the form of inner breath, inner breathing. But for Him it is *samīradaśakam* which means in this whole universe you will see ten layers of *vāyupathas* and these ten layers have separate formation and separate action. This layer in which we are situated is the first layer. And these are called *daśu vāyupatha*, the ten layers of *vāyu*. There are different types of these *vāyus* which are situated in this ether. *samīradaśakam* is Amṛteśvara's *mūlādhāra cakra*. That is, it is in the body of Lord Śiva.

चिदेवोऽथ विमर्श शक्ति सहितः

ciddevo 'tha vimarśa śakti sahitaḥ

Ciddeva which means "Lord of Consciousness" who is always united

with His energy of consciousness, *vimarśaśakti*.

षाड्गुण्यमङ्गावलिः

ṣāḍguṇyamāṅgāvaliḥ

And *ṣāḍguṇyam*, six limbs of His body, two legs, two arms and two hands. We have got these six limbs, but in place of these limbs Amṛteśvara's body has *ṣāḍguṇyam* which are *sarvajñatā*, *tr̥pti*, *anādibodha*, *svātantratā*, *nityamalupta śakti*, and *ananta śakti*. Those are the six limbs of His body.

Sarvajñatā means "all knowledge"; *tr̥pti* means "always full, without any desire"; *anādibodha* means "His knowledge is eternal"; *svātantratā* means "possessing absolute freedom"; *nityam alupta śakti* means "He never gets exhausted, His energy is always full"; and *ananta śakti* means that in spite of all these great things He has "numberless energies". This is the sixth limb. These are the six limbs of His body.

लोकेशः करणानि

lokeśāḥ karaṇāni

Now His internal organs. Not openings, but organs. And these organs are the organs of cognition (*jñānēndriyas*) and the organs of action (*kārmēndriyas*). Actually *indriyas* are not these because in a dead body *indriya* is there but it has no capacity to see or smell and smelling agency is inside, and that in fact is organ. And those organs have passed away from these openings at the time of death. In His body *lokeśāḥ karaṇāni* (*lokapālas* are those who protect all this world from all ten sides.) In this universe of 118 worlds there are ten sides. The Eastern *lokapāla* is Indra; South East *lokapāla* is Agni; then Yama; Nairiti, Western is Varuṇa, Vāyu, Kubera, and Lord Śiva. Above is Brahma, and below is Viṣṇu. These are ten *lokapālas*, who are in place of the ten *indriyas*.

This is the glamour of His body and I bow to that Lord Śiva.

Now in the next verse the author explains what is the greatness of His worship. When anybody worships Amṛteśvara, what does he do? What fruit comes out by His worship.

विगलति भवदौर्गत्यं मोक्षश्रीः श्रयति हृत्कजं कचति ।

प्रसरति परमानन्दो यत्र तदीशार्चनं जयति ॥

*vigalati bhavadaurgatyaṁ mokṣaśrīḥ śrayati hṛtkajaṁ kacati /
prasarati paramānando yatra tadīśārcanam jayati //*

Yatra (where) In whose worship *vigalati bhavadaurgatyaṁ* the *durgati* (the pathway) of this Universe, which is towards torture, pain, death; towards everything saddening; miserable, always miserable, takes its end so in whose worship the misery of this universe is put to its end and *mokṣaśrīḥ śrayati* the possession of the wealth of salvation appears, is owned, and in whose worship *hṛtkajaṁ kacati* the lotus of the heart blooms and *prasarati paramānando* the Supreme blissful state flows from all sides. *tadīśārcanam jayati* Let that worship of Lord Śiva be glorified always.



Life is as fickle as a drop of water pending on a mass of clouds takes away by the winds. Our enjoyment are as unsteady as the lightning that flickers in the midst of clouds. The treasures of yore are as slippery as water. With these reflections in my mind, I have subdued them under the provinces of peace and tranquility”.

From Yog Vāsishtha Vairāgyakhanda.

THEISM IN INDIAN PHILOSOPHY

Dr. B.N. Pandit

We in India have ever been enjoying freedom in thinking. Even in the ancient times, when religion was a great force among all the nations of the world and when our ancestors also were extremely religious-minded, there existed sufficient variety in the way of thinking of our people. There were believers in God, and there were athiests also. Theistic conceptions about God also were of different types and people were always free to argue and to propagate and were ever prepared to listen and to discuss. They were ever willing to be convinced and were never afraid of any type of antagonism. Consequently, all the views and faiths were tolerated in this country. This freedom of thought gave rise to different theories about God.

There were atheists who are known as Cārvākas and who denied the very existence of God and did not believe in religion. Then there were early Buddhists and Jains who believed in religion, praised good actions, hated and condemned sinful activities, had firm faith in the theory of transmigration of soul and accepted the law of Karman. But they did not accept the existence of any God enforcing the law of action and its reward. No one of these sects did ever believe in the authority of the Vedas. Then we come to the Vedic philosophy of Pūrvamīmāṃsā. The adherents of this philosophy practised Vedic religion, worshipped Vedic gods and offered oblations to them in the sacred fire, but even they did not believe in the existence of any Supreme God either as the sole presiding deity over the creation, the preservation and the dissolution of the universe, or as the Master enforcing the law of Karman. It is only the later Mīmāṃsakas who, under the influence of other schools of Indian philosophy, accept the existence of God as the over-lord of all the Vedic gods.

It seems that the earlier Sāṅkhya philosophy of Kapila, which has left some traces in the Upaniṣads, was sufficiently theistic in nature, but the later development of this school proceeded more or less on partially atheistic lines. The Sāṅkhyas, like the Buddhists and the Jains, can be classed as semi-atheists, because all these three sects believe in the law of

action and its reward but do not accept any authority that makes and enforces that law. The Yoga philosophy also does not go much beyond in theism. It accepts the existence of an Īśvara (God) as an ever pure and ever liberated soul who is the preceptor of all the ancient preceptors. This philosophy does not confer on Him any authority to create, to preserve or to dissolve the universe; and, thus, it does not accept any kind of Godhead in him.

The Vedāntic school of Gauḍapāda and Śankara admits that the Īśvara (God) is all powerful, omniscient, omnipresent and omnipotent, that He at His will creates and dissolves this universe consisting of numerous subjects and objects and that He is the Lord of the whole existence making and enforcing its laws of action and its reward. But, at the same time, the Vedānta philosophy teaches that this universe does never exist in reality; it only appears just like a dream or jugglery. The absolute Brahman above is a reality. It is that Brahman which appears as Īśvara (God), as Jīva (soul), and as the phenomenal universe because of some beginningless ignorance come down to us from our previous lives. Neither God, nor soul, nor the universe does exist as something real. They only appear because of Avidyā (ignorance) which is never explicable. So God and His Godhead enjoy only a visionary existence like that of a mirage and do never exist in reality according to the metaphysics of the Vedānta philosophy. Everything other than the Brahman is nothing more than a son of a eunuch and the Brahman alone is something real. It does not possess anything like a quality or a particular at all, but is self evident as the only existing thing. Thus the Vedānta philosophy also is not strictly a theistic one. It comes nearer to the Nihilistic views of Nāgārjuna, the great Buddhist philosopher.

The really theistic schools of Indian philosophy are those of (a) Nyāya-Vaiśeṣikas, (b) Vaiṣṇava, and (c) Śaivas. The Nyāya-Vaiśeṣika philosophies teach that God is a Super Being possessed of the knowledge of everything and the powers to do everything. He is different from souls, who are numerous and also from the elements like atoms, time, space, etc. *Souls are involved in cycles of transmigration because of their past actions ultimately caused by their false knowledge - which has no begin-*

ning. God feels pity for suffering souls and creates this universe out of atoms for them. Souls can get the rewards of their actions in this creation and can achieve real knowledge also. That saves them from further transmigration. God, according to these two schools, is the Lord of the universe but is dependent, firstly, on atoms which He has to collect and use in creation and, secondly, on the past actions of souls in the light of which he has to create worlds, bodies, senses and organs for souls. He has to be ever busy in creating, preserving and dissolving this existence and thus is not sufficiently free and independent.

The Vaiṣṇavas have gone a step further in theism in maintaining that God is absolutely self-dependent; worlds and souls are mere manifestation of this energy and He, by his innate nature, creates, preserves and dissolves this phenomenal existence without depending on anything other than himself. The Vaiṣṇavas are divided into four sects. Some of them say that there is a partial unity and partial diversity between God, on the one hand, and souls and worlds, on the other hand. Others believe in complete diversity and the third sect believes that unity and diversity are manifested one after another in the cycles of dissolution and creation and that therefore both are correct. The fourth sect, namely, the Śuddhādvaita sect of Vallabha believe in the absolute unity of everything. The Śuddhādvaitins do not believe in the existence of Māyā or Avidyā as the cause of the appearance of the phenomenal existence. They say that the Lord, through his own innate energy, makes these phenomena appear in His own self. He is not dependent on anything other than His energy. It is His nature that He appears in the form of a limited soul, transmigrates, is involved in ignorance, achieves real knowledge and attains, as it were, His own Godhead through it. There the principles of the Vaiṣṇavas are highly theistic, but they take God in the form of Lord Nārāyaṇa or Lord Kṛṣṇa and take His energy in the form of Lakṣmī or Rādhikā. They do not preach the existence of God without a form. They believe in the existence of some particular abode of God which is made of pure substances. It is named as Vaikuṇṭha and comes to be a sort of a superior heaven. This view of the Vaiṣṇavas brings their teachings closer to mythology than to philosophy. So, in spite of being strictly theistic, the outlook of the Vaiṣṇavas is more mythological than philosophic, while the Vedāntic outlook is strictly

philosophic though less theistic. The Vēdānta, therefore, is more popular with scholars and thinkers than the Vaiṣṇava theories.

The Saivistic theory is, on the one hand, absolutely philosophic and, on the other hand, strictly theistic. The Śaivas believe that the real self alone is metaphysically true. There is no limitation of any kind in that self. Time and space do not limit it. The self alone has real existence and every thing else has only an imaginary existence. The self is ever self-evident and self-conscious. Its consciousness is a sort of a stir in its existence. Everything exists in the self in the form of self, just as all the parts of a tree exist in a seed in the form of seed. A seed is seed and seed alone. There is no trace of either the appearance or the name of a tree in a seed and yet the name and the appearance of a tree do exist in a seed. In the same way the self is self alone and there is not any trace of the phenomenal universe in it. It is an unlimited 'I' and 'I' alone; yet the whole objective phenomena exist absorbed in that 'I' in such a way that its objectivity does not appear at all. It is on account of the subtle stir of the consciousness of the self that the objective existence starts appearing in its objective nature. This is the activity of creation of the self. Then this existence keeps on appearing for pretty long ages. This is his activity of preservation. After a long time this objective creation gets again absorbed into the self and this is the activity of absorption of the self. The self appearing as a limited soul conceals his real nature which is free from all limitation, and this is his activity of obscuration. At times a soul recognizes his forgotten nature of limitlessness and this is his activity of revelation. The self is always keeping himself busy in these five activities with respect to different worlds and souls. This he does by virtue of his nature and, doing so, he always exists in this universal aspect. But, while doing so, he does not deviate even a bit from his transcendental aspect which is one complete whole 'I' and that alone. The self is the Parama Śiva or the Absolute God. His transcendental aspect is His Śivahood and His universal aspect is His Śaktihood. The five activities of creation, preservation, absorption, obscuration and revelation are known as this fivefold Godhead. He manages the sport of His Godhead by means of His innate stir of consciousness which is not in any respect different from Him. So He is absolutely self-dependent. The whole universe is only an aspect of His everything. Everything is He and

He is everything. He is in everything and He is beyond everything. This is His nature and this is His Godhead. Had he not been possessed of his nature of indulging in the five activities of Godhead, he alone would have existed or He also may have or may not have existed at all, for who would have questioned or established His existence. But He exists, and exists as Absolute God and consequently is ever indulging luxuriously in the five activities of His Godhead by His own nature. The inexplicable ignorance, atoms, Karmas, etc., appear in this drama of Godhead at different stages, but the root cause of all these sources of the universe is the Supreme Godhead of the Parama Śiva according to the Śaiva Philosophy. In this way Śaivism is the only school of Indian philosophy which accepts and explains theism in its highest form and yet is strictly monistic in view and philosophic in character. Śaivism is as theistic as Vaiṣṇavism, as philosophic as Nihilistic Buddhism, as monistic as the Vedānta, as realistic as the Sāṅkhya, as practical as the Mīmāṃsā and as logical as the Nyāya-Vaiśeṣika. But it is a pity that such a well developed school of Indian philosophy is very little known even in India, much less in any other country of the world.



समर्पण

यो देवः करुणाकरः बुधनुतः शुद्धः स्वतन्त्रो महान्
 यो मे स्वात्मसुखप्रदः गुरुवरः श्रीलक्ष्मणाख्यः गुणी।
 लोकालोकविभूतिदाननिरतस्तज्ञः प्रत्यक्षः प्रभुः
 तमेकं गुरुलक्ष्मणं भयहरं बद्धाञ्जलिर्नम्यहम्॥

With folded hands, I offer my ceaseless obeisance to that Master who is unique, realizer of the eternal, the Lord, source of compassion, ever present on this earth, respected by scholars, giver of worldly bounties and heavenly glories, bestower of internal happiness, supreme Master known as Shri Lakṣmaṇa virtuous, pure, great and independent.

मखनलाल कुकिलू

पराशक्तिस्तव

रचना—आचार्य महेश्वर जू राजदान

नमो परिमितकृत्वोऽनन्तकृत्वो नमोनमः।

नमो नमो नमोभूयः पुनर्भूयो नमो नमः॥

प्रसीद मम विश्वेश गंगाधर महेश्वर।

नमः सकलकल्याणदायिने शूलपाणये॥

यह देवीस्तोत्र जिसमें पराशक्ति महामाया के एक सौ सत्तार्हस नाम हैं, हमारे सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजी महाराज के विद्यागुरु स्वनामधन्य श्रीमुकुन्दरामराजदान के सुपुत्र आचार्य महेश्वर जू राजदान का बनाया हुआ है। आचार्य जी शैवशास्त्रों के परम्परा प्राप्त धुरन्धर विद्वान् थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी और अप्रतिम थी। शक्ति साक्षात्कार से अनुगृहीत होके इन्होंने निर्वाणावस्था प्राप्त करने से पूर्व इस देवीस्तोत्र की रचना की और इसे अपने अगल-बगल में सुरक्षित रखा। कुछ समय के पश्चात् शिवसायुज्य को पाकर वे अन्तर्ध्यान हुए। हमारे सद्गुरु महाराज को उसी समय इनके अन्तर्ध्यान होने का समाचार भेजा गया और वे शीघ्र रघुनाथ मन्दिर करफली मुहल्ला श्रीनगर स्थित इनके निवास स्थान पर पहुंचे और इनकी अन्त्येष्टि क्रिया धूमधाम से करवाई। इससे पूर्व उन्होंने इनकी मृत्यु-शय्या पर पड़ी इस देवी स्तुति को देखा और इसे संभाला। इसका वर्णन आचार्य जी ने देवी स्तुति के अन्त पर निम्नलिखित श्लोकों में इस प्रकार किया था—

आयुरन्त्य दिने देवीमेभिर्नामभिरैवचतः।

तुष्टाव परया भक्त्या राजानक महेश्वरः॥

निधनात्पूर्व यामिन्यां देवीदर्शन हर्षितः।

आगामिन्यां जहौ प्राणान्प्रथमे प्रहरे क्षणात्॥

शिवाद्वयप्रथालोकप्रद्योतित दिगम्बरः।

कृष्णाष्टम्यां श्रावणस्य शिवसायुज्यमासदत्॥

अपनी आयु के अन्तिम दिन पर, शक्ति साक्षात्कार से अनुगृहीत होकर, राजानक महेश्वर (महेश्वर जू राजदान) ने देवी की अत्यन्त भक्ति से स्तुति की। निर्वाण प्राप्ति से पूर्व रात्रि को माता पराशक्ति के साक्षात्कार से प्रफुल्लित होकर, दूसरे दिन उन्होंने ब्राह्मी मुहूर्त में अपने प्राणों को सदा के लिए छोड़ा। इस प्रकार देवी दर्शन के प्रकाश से सारे दिगन्तर प्रकाशित हो उठे और श्रावणमास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को आचार्य महेश्वर जू राजदान ने शिवसायुज्य को प्राप्त किया।

संपादक

ओं नमः श्री चिद्देख्यै॥

ओं

उमा माहेश्वरी काली गिरिजा शाम्भरी शिवा।

पार्वती चंडिका गौरी जगन्माता शिवप्रिया॥ १॥

चंद्रचूडा त्रिनयना शारदा सिंहवाहना।

सती दाक्षायणी आर्या मृदानी प्रमथाम्बिका॥ २॥

ओं

उमा, माहेश्वरी, काली, गिरिजा, शाम्भरी, शिवा,

पार्वती, चंडिका, गौरी जगन्माता, शिवप्रिया,

चंद्रचूडा, त्रिनयना, शारदा, सिंहवाहना, सती,

दाक्षायणी, आर्या, मृदानी, प्रमथाम्बिका,

गजास्यजननी रौद्री लोकपूज्या वरप्रदा ।
 रुद्राणी भैरवी दुर्गा भवानी भवमोचनी ॥ ३ ॥
 कात्यायनी भद्रकाली शर्वाणी शर्मदायिनी ।
 स्कन्दमाता हैमवती वरा महिषमर्दिनी ॥ ४ ॥
 कामेश्वरप्रिया सौम्या महात्रिपुरसुन्दरी ।
 तुर्या तुर्यातीतरूपा पंचब्रह्मासनस्थिता ॥ ५ ॥
 कृपाशीला वेदवेद्या जयदा सर्वमङ्गला ।
 ललिता सुभगापर्णा देवेशी कुलनायिका ॥ ६ ॥
 शिवप्रिया शिवाराध्या शिवदा शिववल्लभा ।
 शिवाभिन्ना शिवार्धाङ्गी शिवशक्तिः शिवङ्करी ॥ ७ ॥
 शिवभक्तिप्रिया शैवचिन्तामणिपदप्रदा ।
 शरणागतसंत्राणनिपुणा सगुणागुणा ॥ ८ ॥
 वैष्णवी विष्णुरूपा च विष्णुमायास्वरूपिणी ।
 गोविन्दभगिनी कंसध्वंसिनी विन्ध्यवासिनी ॥ ९ ॥
 ह्रींकाररूपा ह्रींकारवाच्या श्रीभुवनेश्वरी ।
 पापान्तकारिणी दीक्षा देवी भुवनमालिनी ॥ १० ॥
 पशुपाशहरा विद्या पराहन्तात्मिका परा ।
 सिद्धिप्रदा सिद्धलक्ष्मीः कुब्जिका भगमालिनी ॥ ११ ॥
 वामा ज्येष्ठा अघोरेशी निष्कला केवला शिवा ।
 प्रकृतिविकृतिविश्वकारिणी गुणरूपिणी ॥ १२ ॥
 ब्रह्मेशविष्णुनमिता सर्वदेवगणार्चिता ।
 विश्वेश्वरी सर्वदेवमयी रोगभयापहा ॥ १३ ॥
 सर्वलोकप्रणेत्री च संसारार्णवतारिणी ।
 नित्यसुन्दरसर्वाङ्गी सच्चिदानन्दलक्षणा ॥ १४ ॥
 दक्षकाली महाकाली गुह्यकाली कपालिनी ।
 महाविद्या महामाया सर्वोपद्रवनाशिनी ॥ १५ ॥
 सौभाग्यलक्ष्मीः प्रदाक्षी भक्तानुग्रहकारिणी ।
 महासरस्वती ब्राह्मी सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥
 पद्मासना पद्मकरा परमानन्ददायिनी ।
 व्यापिनी चानवच्छिन्ना सर्वभूताशयस्थिता ॥ १७ ॥
 परमामृतरूपा च मोक्षदात्र्यमृतेश्वरी ॥

गजास्यजननी, रौद्री, लोकपूज्या, वरप्रदा, रुद्राणी,
 भैरवी, दुर्गा, भवानी, भवमोचनी
 कात्यायनी, भद्रकाली, शर्वाणी, शर्मदायिनी,
 स्कन्दमाता, हैमवती, वरा, महिषमर्दिनी,
 कामेश्वरप्रिया, सौम्या, महात्रिपुरसुन्दरी, तुर्या,
 तुर्यातीतरूपा, पंचब्रह्मासनस्थिता,
 कृपाशीला, वेदवेद्या, जयदा, सर्वमङ्गला, ललिता,
 सुभगा, अपर्णा, देवेशी, कुलनायिका,
 शिवप्रिया, शिवाराध्या, शिवदा, शिववल्लभा,
 शिवाभिन्ना, शिवार्धाङ्गी, शिवशक्तिः, शिवङ्करी,
 शिवभक्तिप्रिया, शैवचिन्तामणिपदप्रदा, शरणा-
 गतसंत्राणनिपुणा, सगुणा अगुणा,
 वैष्णवी, विष्णुरूपा, विष्णुमायास्वरूपिणी,
 गोविन्दभगिनी, कंसध्वंसिनी, विन्ध्यवासिनी,
 ह्रींकाररूपा, ह्रींकारवाच्या, श्रीभुवनेश्वरी,
 पापान्तकारिणी, दीक्षा, देवी, भुवनमालिनी,
 पशुपाशहरा विद्या, पराहन्तात्मिका, परा,
 सिद्धिप्रदा, सिद्धलक्ष्मीः, कुब्जिका, भगमालिनी,
 वामा, ज्येष्ठा, अघोरेशी, निष्कला, केवला, शिवा,
 प्रकृतिः, विकृतिः, विश्वकारिणी, गुणरूपिणी,
 ब्रह्मेशविष्णुनमिता, सर्वदेवगणार्चिता, विश्वेश्वरी,
 सर्वदेवमयी, रोगभयापहा,
 सर्वलोकप्रणेत्री, संसारार्णवतारिणी, नित्य-
 सुन्दरसर्वाङ्गी, सच्चिदानन्दलक्षणा,
 दक्षकाली, महाकाली, गुह्यकाली, कपालिनी,
 महाविद्या, महामाया, सर्वोपद्रवनाशिनी,
 सौभाग्यलक्ष्मीः, प्रदाक्षी, भक्तानुग्रहकारिणी,
 महासरस्वती, ब्राह्मी, सर्वकामफलप्रदा,
 पद्मासना, पद्मकरा, परमानन्ददायिनी, व्यापिनी,
 अनवच्छिन्ना, सर्वभूताशयस्थिता,
 परमामृतरूपा मोक्षदात्री, अमृतेश्वरी ॥

सुश्री प्रभादेवी के सौजन्य से



अनुभव सौरभ

Tr. Dr. B. Baumer

अन्तर्लक्ष्यविलीनचित्तपवनो योगी यदा वर्तते
दृष्ट्या निश्चलतारया बहिरसौ पश्यन्नपश्यन्नपि।
मुद्रेयं खलु शाम्भवी भवति सा युष्मत्प्रसादाद्गुरो
शून्याशून्यविवर्जितं भवति यत् तत्त्वं पदं शाम्भवम्॥

*When the yogi, his mind and breath merged in the inner goal,
directs his gaze outward, unblinking,
himself seeing, yet as if not seeing,
by your grace, Master, this is the imprint of Siva.
This Reality indeed is the state of Siva,
beyond both void and non-void*

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयंनो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

*Whom the Śaivas worship as Śiva, the Vedāntins as Brahman, the
Buddhists as Buddha, the logicians as the Agent, the Jains as Arhat and
the Mīmāṃsakas as Karma, may he, Hari, the Lord of the three worlds,
bestow upon us the desired fruit.*

अभिनवगुप्तस्य “अनुभवनिवेदनम्”

नमः श्रीसंवित्प्रभायै

रचनाकार—आचार्य पं० रामेश्वर झा

भाषापद्यानुवाद— डॉ० परमहंस मिश्र

(श्री तन्त्रालोक के हिन्दी टीकाकार,

ए ३६ बादशाहबाग, वाराणसी - २२१००१)

जनकपुरी मिथिला देश के प्रकांड विद्वान् स्वर्गीय आचार्य रामेश्वर झा, हमारे गुरुवर्य श्री ईश्वरस्वरूप जी से मिलने ई० सन् १९९६ में आये थे। प्रथम मिलन में ही वे इतने आकर्षित हुए कि उन्होंने गुरुदेव को तथ्य रूप से अपना गुरु मान लिया। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके रस-सिक्त श्लोकों में झलकता है। हमने इनके श्लोकों को 'गुरु-स्तुति' का नामकरण देकर विक्रमी संवत् २०२५ में छपवाया। उसी गुरु स्तुति का पाठ ईश्वराश्रम परिवार का प्रत्येक सदस्य इस समय सदा भक्ति से करता है। इस के अतिरिक्त अनेकानेक सार-गर्भित, त्रिक-शास्त्रानुकूल पद्यों को समय-समय पर लिखकर वे सद्गुरु महाराज को रीझते रहे। प्रस्तुत पद्यावलि उन्होंने मुझे वाराणसी से ई० सन् १९७० में भेजी। इतने वर्षों से मैं इन श्लोकों का रसास्वादन स्वयं करती रही। इस वर्ष दैवयोग से कहें या गुरु-कृपा से मुझे हिन्दी संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् डॉ० परमहंस जी से सम्पर्क हुआ। बचपन से ही विद्वद्गर्ग, आत्मानुभवी तथा स्थितप्रज्ञ महानुभावों के साथ उठना-बैठना रहा। अतः परमहंस जी के श्री तन्त्रालोक का हिन्दी-उल्था जब मैंने बांचा तो मन-महोदय ने परामर्श दिया कि इनके साथ पत्र-व्यवहार करते रहने से ज्ञान में कई प्रकार की वृद्धि होनी संभव है। मैंने परमहंस जी को ये अठारह श्लोक, लिखकर इस अभिप्राय से भेजे कि वे मुझे इनका हिन्दी में पद्यानुवाद कर दें। उन्होंने विद्वत्ता के नाते बिना किसी झिझक के पद्यानुवाद दोहों में तथा बड़े छन्दों में भेज कर कृतार्थ किया। उनके इस निःस्वार्थ कार्य के उपलक्ष्य में मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ। संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ किन्तु हिन्दी जानने वाले प्रेमी भक्तों के हितार्थ मैं इन्हें 'मालिनी' पत्रिका में छापने के लिए दे रही हूँ। पाठक-गण इन को पढ़कर अवश्य लाभान्वित होंगे ऐसी आशा है।

सुश्री प्रभादेवी

पीयूषमाधुर्यमभिक्षरन्तीमास्वादयन्तीमखिलेन्द्रियैश्च।

अत्यद्भुतां तृप्तिमहोदधानां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥

स्वात्म-सुधा-मधु-रस नित करती
स्खलित, स्वयम् उसका आस्वाद,
अतिशय अद्भुत तृप्तिमयी माँ
मिटा हृदय का विकृत विषाद,

संवित्प्रभा विजय जय दे दो
आदिशक्ति निज परा-प्रसाद ॥ १ ॥

दोहा— क्षरण अमृत-मधु कर स्वयम् करती नित आस्वाद।
आदिशक्ति संवित्प्रभा जय श्रद्धा संवाद ॥ १ ॥
तादात्म्यरूपां ममतामुपेतामज्ञातपूर्वा दधतीश्च शक्तिम्
कामेश्वरीं सर्वमनोभिरामां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम् ॥ २ ॥
तादात्म्यरूपा ममतामयी मां सदाशिवैक्यानुभवात्मरूपा।
कामेश्वरी सर्वरहस्यविज्ञा लीलामयी सर्वमनोभिरामा
संवित्प्रभा आदिमशक्तिरूपा प्रणाम हे ईश्वरी भावभामा ॥ २ ॥

दोहा— समरस शिवतादात्म्यमय, अज्ञेया अनुरक्ति।
कामेश्वरी ! संवित्प्रभा
जय जय आदिम शक्ति ॥ २ ॥
स्वात्मप्रभामेव परायमाणां भिन्नामभिन्नाञ्च निजस्वरूपाम्।
एकाञ्च बह्वीं सततं भवन्तीं संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम् ॥ ३ ॥
स्वात्मप्रभावा प्रतिभामयी माँ। पराप्रभाभावितविश्वरूपा।
संवित्प्रभा स्नेहमयी शरण्या
विभासमाना स्वरहस्य रूपा,
अनन्तरूपा प्रतिरूपरूपा
सृष्ट्यात्मिका आदिमशक्तिरूपा ॥ ३ ॥

दोहा— संवित्प्रभा अनन्त जय एका आदिमशक्ति,
परा प्रभामय दो मुझे अपनी नव अनुरक्ति ॥ ३ ॥
आद्यन्तहीनामपि मञ्जुदेहां निरस्तवाचां स्मितबोधितेहाम्।
अग्राह्यरूपामपि संस्पृशन्तीं संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम् ॥ ४ ॥
आदि अन्त से रहित सदा तुम देहभाव में व्यक्त ललाम
स्मिति में निहित विदित है ईहा ज्ञान क्रिया अव्यक्त अनाम
वागतीत अग्राह्यरूप जय प्रभास्पर्श जयशक्ति अकाम
संवित्प्रभा प्रणाम! प्रणत पर सदा सदय सुषमा-अभिराम ॥ ४ ॥

दोहा— आदिशक्ति संवित्प्रभा शाश्वत मञ्जु शरीर।
स्मितिवागस्पर्शास्पर्शमयी नति नव जय अशरीर ॥ ४ ॥

दिक्कालदेशव्यवधानशून्यां स्वान्तर्गतांस्तांश्च विबोधयन्तीम्।
सत्तामसत्ताश्च समुद्रमन्तीं संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ ५॥

दिशा देश-व्यवधानशून्य जय शिवा शक्ति कल कालातीत
स्वात्मफलकपर नित रचती हो उनका ही विबोध संगीत।
अनस्तित्व अस्तित्व उभय का समुद्रमन करती उद्गीथ
संवित्प्रभा प्रभात निरन्तर आदिशक्ति जय विगत निशीथ॥ ५॥

दोहा— आदिशक्ति संवित्प्रभा जय जय सर्वातीत
सदसद्वमन विहाग का तुम गाती संगीत॥ ५॥

सर्वेश्वरीं सर्वमयीं समन्तात् सापेक्षरूपाद्विनिवृत्त रूपाम्।
ब्रह्मात्मिकां वाचकमातरं त्वां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ ६॥

सब की तुम ईश्वरी सर्वमयी नित सृष्टि की रास रचा रही हो
निरपेक्ष सदा रहती हो शुभे सापेक्ष रूप से विमुख रहती हो।
अयि ब्रह्ममयी चिर वाचक माँ, संवित्ति-विभा में ही भा रही हो।
तुम तो आदिम शक्ति हो, संविद-अनुग्रह रूप स्नेह निभा रही हो॥ ६॥

दोहा— सर्वेश्वरि निरपेक्ष तुम, ब्रह्ममयी पर-रूप।
आदिशक्ति संवित्प्रभा नौमि अरूप अनूप॥ ६॥

पूर्णत्वसंबोधकरीं प्रसन्नां दीप्तां स्वतेजोमयवर्णनाभिः।
सद्यः स्थितां सर्वविघस्मरीं त्वां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ ७॥

तुम पूर्णताबोध कराती सदा माँ हमेशा प्रसन्न रहा करती हो
अपनी ही प्रभा से प्रदीप्तिमयी पर-दीप्ति में नित रमा करती हो।
संहारमयी सुविघस्मरी हो, रचनायें अनन्त रचा करती हो
तुम आदिम शक्ति महामहिमे, हित की नित बात कहा करती हो॥ ७॥

दोहा— पूर्णबोधमय दीप्तिमय कर समग्र संबोध।
आदिशक्ति संवित्प्रभा, करो बुद्धि परिशोध॥ ७॥

बालां शुभां बालरवीन्द्ररूपां विश्वप्रकाशोन्मुखतामुपेताम्
शम्भु प्रकाशोऽहमितिस्फुरन्तीं संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ ८॥

बाला विचित्र रवीन्दुनिभानित विश्वविकास किया करती हो
उसमें भरती हो प्रकाश सुधा, अणु को तुम शम्भु किया करती हो।

अशुद्ध अहे इस अध्वा में शुद्ध अहं का उजास किया करती हो।
आदिम शक्ति हो, संवित्ति सुप्रभा वरदान में ज्ञान दिया करती हो॥ ८॥

दोहा—
सूर्यप्रभा बाला शिवा सदा प्रकाशोन्मुख रूप।
आदिशक्ति संवित्प्रभा नौमि अहन्तु अनूप॥ ८॥

नित्यप्रकाशेऽङ्कुरितस्वरूपां मायां च विद्यां विनिवारयन्तीम्।
स्वच्छप्रकाशे मयि दृश्यमानां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ ९॥

तुम नित्य प्रकाश की भू में शुभे नवरूप की अंकुर सी रहती हो
यह माया चेरी पड़ी चरणों में अविद्या विनीत होकर रहती है।
मेरे प्रकाश की स्वच्छता में तुम दीखती भा भरिता महिमामयि
तुम संविद शुभ्र प्रभा तुम आदिम शक्ति प्रणाम सदा महिमामयि॥ ९॥

दोहा—
शिवा प्रकाशाङ्कुर शुभा, मायाविद्यारोध
आदिशक्ति संवित्प्रभा, कर दो देकर बोध॥ ९॥

अच्छप्रकाशे प्रसरत्प्रभावां विद्युत्प्रभाप्लावितदेहदीप्तिम्।
भक्तार्थलीलावपुरादधानां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ १०॥

स्वच्छ प्रकाश में होता प्रसार तुम्हारे प्रभाव का दिव्य दयामयि
बिजली की प्रभा-दीप्ति से प्लावित देह तुम्हारी अहे प्रतिभामयि
तुम धारण हो करती नित देह स्वभक्तजनों के लिये करुणामयि
पूर्णा प्रभा से विभास्वर आदिम शक्ति हो नौमि सदा महिमामयि॥ १०॥

दोहा—
प्रसरित आभा में उदित, विद्युत्सी, द्युतिमान।
आदिशक्ति संवित्प्रभा, जय प्रज्ञा-विज्ञान॥ १०॥

रक्ताम्बरां रक्तविशालनेत्रां ब्रह्मादिमञ्जोपरि राजमानाम्
सद्यः स्थितां यत्नशतैरलभ्यां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम्॥ ११॥

ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-देव के मञ्जों पै राजमान्
कमलों से लाल कल लोचन तुम्हारे ये।
लाल-परिधान से हैं दीपित दिशायें सब
इन्द्रिय-देव वश में प्रसन्न हैं तुम्हारे ये।
सद्यः समेधमान वैभव तुम्हारे ये,
पाने के प्रयास विकलाङ्ग हैं हमारे ये
संवित्प्रभा हो आदिशक्तिमती माता हो

पद में तुम्हारे नत-भाव हैं हमारे ये ॥ ११ ॥

दोहा—

देवमञ्जराजितशिवे! रक्त नेत्रवस्त्रादि।

आदिशक्ति संवित्प्रभा, नत हूं अहे अनादि ॥ ११ ॥

श्री देशिकेन्द्र कृपयाभिलक्ष्यामैश्वर्यशक्तिं शिवसंसृसिक्षोः।

हृद्यानवद्यां परमाप्ययां त्वां संवित्प्रभां नौम्यहमादिशक्तिम् ॥ १२ ॥

ऐश्वर्य की शक्ति महेश्वर की रचना में रहस्यमयी हो प्रभा

देशिक-दिव्य-कृपा परिलक्षित लक्षण लक्ष्यमयी हो प्रभा।

यह हृद्य है अनवद्य असीम परा की परात्परता हो प्रभा

नत हूं जय आदिमशक्ति शुभे। तप की तुम तत्परता हो प्रभा ॥ १२ ॥

दोहा—

शैव सृष्टि-ऐश्वर्यमयि हृद्याव्यय अनवद्य।

आदिशक्ति संवित्प्रभा नौमि सनातन सद्य ॥ १२ ॥

पर्यन्तहीनस्वविकासमाप्तामन्तर्बहिर्भावमनाश्रयन्तीम्।

संहृत्य सर्वं शिवतामुपेतां नौमि प्रभां स्वात्मगतामरूपाम् ॥ १३ ॥

अन्तहीन शक्ति का विकास यह देख देख

स्तब्ध नित दर्शक की बुद्धि रह जाती है।

अन्तर्बह्य विश्व-भाव से भी तुम ऊपर देवि!

रहती अनश्रित हो यह वृत्ति कह जाती है

सब को स्वयं स्वात्म में ही समाहित कर

शिव के रहस्य में रहस्य रह जाती हो

संवित्प्रभा हो आदि शक्ति रूपा साधना के

सारे सन्दर्भ सत्य सत्य कह जाती हो ॥ १३ ॥

दोहा—

पूर्ण विकासिताऽनाश्रिता शिवरूपाश्रित सर्व।

आदिशक्ति संवित्प्रभा नौमि पुण्य यह पर्व ॥ १३ ॥

श्रीदैशिकावाप्त शिवात्मभावः श्रीशारिका दत्त कवित्व शक्तिः।

रामेश्वरो मैथिलभूसुरोऽयं व्यधात् स्तुतिं स्वप्रभया प्रभायाः ॥ १४ ॥

देशिक शिरोमणि देव लक्ष्मण से मुक्ति लक्ष्य

पाकर पराभाव भावित हूं शिवरूप।

कवि हूं कवित्व वरदान पाया शारिका से

मैथिल रामेश्वर विप्र प्राप्त सर्वात्म रूप

अपनी प्रभा से स्तुति करता प्रभा की मैं
तीनों हैं मेरे लिये जीवन वरदान रूप।
धन्य वह साधक जो पढ़े इसे बार-बार
शक्ति के प्रभाव से बनेगा विज्ञान रूप॥ १४॥

दोहा— प्रभा प्रार्थना में प्रभा रामेश्वर की भव्य।
आदिशक्ति संवित्प्रभा को अर्पित अर्पित अति नव्य॥ १४॥
स्तुत्यानया प्रीतिमुपागता सा देवी विधत्तां करुणाकटाक्षम्।
दासे मयीवाखिललोकसंधे स्युर्येन लोका अपि वीतमोहाः॥ १५॥
स्तुति से हो प्रसन्न प्रभा महिता, भव-भाव-विभास्वर भावमयी।
मुझ दास पै फेरे अपाङ्ग परा-करुणामय भाव विभावमयी
इस लोक पै लोकललामविलोचन दृष्टि हो वर वात्सल्यमयी।
जिससे हों, कृतार्थ सभी गतमोह, प्रणाम करोड़ तुम्हें करुणामयी॥ १५॥

दोहा— हो प्रसन्न स्तुति से करो, कृपा दृष्टि सब ओर।
आदिशक्ति संवित्प्रभा, होवें सभी विभोर॥ १५॥
अशेषतापशमनं श्री गुरोः पादपङ्कजम्।
प्रणमामि सदा भक्त्या, हृदिस्थं चामृतद्रवम्॥ १६॥
पाप-ताप-शामक शिवद श्री गुरु-चरण-सरोज।
नमन भक्तिमय, हृदय में, अमृत-द्रव-अम्भोज॥ १६॥
देवीं श्रियायुतं नौमि, सर्वक्लेशापहारिणीम्।
श्री शारिकां सुधा पूर्णा, पूर्णानन्दप्रदायिनीम्॥ १७॥
क्लेश नाशिका शारिका, देवी वरद वरेण्य।
श्री सहिता सुखदायिनी, जय माँ सहृदय सेव्य॥ १७॥
अद्वितीयां प्रभां नौमि, प्रभा पूरितमानसः।
भिन्ना चाभिन्नरूपां त्वां, स्वान्तस्थां च बहिस्थिताम्॥ १८॥
प्रभा भव्य भारत-विभा विश्वात्मिका विभूति।
भेदाभेदातीत जय, शैवाभा-संभूति॥ १८॥

ॐ नमः शिवायै ॐ नमः शिवाय



तन्त्र-रहस्य का महत्व

सुश्री प्रभादेवी

तन्त्र-सिद्धान्त का रहस्य अहंपरामर्श की भित्ति पर अवलम्बित है। तन्त्र हमें व्यावहारिक जीवन में पराशक्ति का अनुभव कराने में समर्थ हैं। इस शास्त्र का मुख्यलक्ष्य यही है कि मनुष्य किसी भी दशा में रह कर स्वात्मसाक्षात्कार सहज में कर सके। इस आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति के लिये तन्त्र हमें स्पन्द-तत्त्व की गवेषणा करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

तन्त्रों का सिद्धान्त अन्य सभी मतों के सिद्धान्तों से बिल्कुल भिन्न है। देखिये ! जिन शब्द-आदि नामक पांच तन्मात्राओं को अन्य मतावलम्बियों ने निन्दनीय कहकर त्याज्य तथा अधोगति का कारण माना है, उन्हीं को यह तन्त्र-शास्त्र स्वरूप-साक्षात्कार का मुख्य सोपान मानता है। ये पांच तन्मात्र यद्यपि प्रत्येक प्रमाता को सहज में ही प्राप्त हैं, तथापि इन का वास्तविक रहस्य न समझ कर सामान्य लोग इन की परिधि में आकर जीव, संसारी आदि कहलाते हैं। इस के उलट तांत्रिक योगी इन्हीं शब्दादि विषयों का आश्रय लेकर शांभवस्थिति से संपन्न बनता है। कहा भी है—

‘येन येन हि बध्यन्ते जन्तवो.....’

अब प्रश्न यह है कि तांत्रिक योगी कैसे और क्यों इन तन्मात्रों के लपेट में नहीं आता। सच तो यह है कि यह योगी इन सभी विषयों को ‘प्रथमाभास’ के रूप में देखता है। उस का लक्ष्य सदा शब्दादि विषयों के सूक्ष्मतम अंश पर रहता है स्थूलता पर नहीं। दूसरे शब्दों में यूँ कहा जा सकता है कि वह योगी निर्विकल्प पश्यन्ती वाणी पर ठहर कर ही मध्यमा तथा वैखरी रूपी जगत में हानादानादि व्यवहार करता है।

इसी भाँति स्पर्श का आश्रय लेकर वह योगी वेद्य-वस्तु को स्थूलता पर ध्यान न देकर उसकी सूक्ष्मतम आनन्दशक्ति को ही अनुभव में लाने का प्रयास करता है। ऐसा करते हुए वह सहज में ही स्वात्म-साक्षात्कार करने में समर्थ बनता है। किन्तु ध्यान रहे कि इस स्पर्श-तन्मात्र के अभ्यासी अति उच्चकोटि के क्रियात्मक तांत्रिक योगी माने जाते हैं। इन का दर्शन-मात्र करने से ही संसारी जनों का कल्याण होता है। कहा भी है—

‘दर्शनात्स्पर्शनाद्वापि.....’

रूप का आश्रय लेकर भी तांत्रिक योगी अन्तरात्मा तक पहुंचता है। अत्यन्त हृदय-ग्राही तथा सुन्दरतम वस्तु को समक्ष रखकर वह योगी उस पर धारणा लगाते ही उच्चतम निर्विकल्प-दशा का अनुभव करता है। इस विषय में विज्ञान-भैरव-तंत्र में कहा है—‘स्थूलरूपस्य भावस्य’।

इसी प्रकार रस तथा गंध का अनुभव करते हुए वह योगी स्वात्मानन्द में विचरण करता है। यह तो रही सौख्य की बात। भयंकर दुःखों के आने पर भी वह तांत्रिक योगी विह्वल न होकर उन में भी स्वात्मानन्द-रस का आस्वाद लेता है। शिवदृष्टि में भी कहा है—दुःखेऽपि प्रविकासेन। (आ ५ श्लो ९) तथा अभिनवगुप्त जी भी परात्रिंशिका शास्त्र के विवरण में कहते हैं—दुःखेऽपि एष एव चमत्कारः।

दूसरी मुख्य विशेषता तन्त्रसिद्धान्त में अनर्गल शक्तिपात की कही जा सकती है। शिव-शक्तिपात किसी भी साधना की अपेक्षा न करते हुए सदा स्वतंत्र और निरपेक्ष है। यह शक्तिपात अधिकारि-भेद की सीमा से बाहर है। ऐसा भी देखने में आया है कि जो व्यक्ति सामान्य लोगों की दृष्टि में निन्दनीय माना जाता है, वह भी शिव की स्वतंत्र इच्छा के फल-स्वरूप शिवशक्तिपात से आघात होता हुआ देखा गया है। इधर साधन-चतुष्टय-संपन्न ब्राह्मण आजीवन भेदप्रथा से रञ्जित अपने सीमित रूप में काल-यापन करते देखा जाता है। इसी आशय से मुकुट-तन्त्र में अधिकारी-भेद की अवहेलना करते हुए कहा है—

अन्त्यजातोऽपि हीनाङ्गः साधकः स च मोक्षभाक्
एभिर्गुणैर्विमुक्तात्मा ब्राह्मणोऽपि न मोक्षभाक्।
द्विजोऽपि मायीयस्त्याज्यस्तु म्लेच्छो ग्राह्यो ह्यमायकः

तीसरी विशेषता तन्त्रों के रहस्य में यह देखी जाती है कि ज्ञान सदा योग से संबन्धित होकर ही परमार्थ-मार्ग का प्रदर्शक माना जाता है। तर्क से युक्त शुष्क ज्ञान का यहां कोई प्रयोजन नहीं। कहा भी है

‘असद्युक्ति विचारज्ञाः.....’

वास्तव में तांत्रिक योगी संपूर्ण कर्मों को ज्ञान की कसौटी पर कस कर ही करता है। अतः सभी जागतिक कार्यों में पारमार्थिक दृष्टि से सदा सचेत रहना ही योगी का परमलक्ष्य माना जाता है तथा मध्य-धाम में प्रविष्ट होना ही उस के लक्ष्य की पूर्ति मानी जाती है। इस मध्यधाम में प्रविष्ट होने के लिए वह योगी किसी भी साधना को सहर्ष तथा निर्भय होकर

करने के लिए सदा उद्यत रहता है। कहना न होगा कि तन्त्रों की दृष्टि में वह सारा सांसारिक व्यवहार उसी मध्य-धाम में स्थित है। अतः वह योगी प्रत्येक चेष्टा में उसी परम-धाम का अनुभव करता है। अभिनवगुप्त जी कहते हैं—

‘अविकल्पपथारूढो.....’

चौथी विशेषता तन्त्र-सिद्धान्त में यह देखी जाती है कि यह सारा ब्रह्माण्ड शिव की स्वेच्छा से उस की स्वात्मभित्ति पर ही स्थित है। अतः स्वात्म-दर्पण में ही संपूर्ण विश्व की छाया प्रतिभासित होती है। प्रत्यभिज्ञाहृदय का निम्नलिखित सूत्र इसी आशय का प्रदर्शन करता है—

‘स्वेच्छया स्वभित्तौ.....’

तथा तंत्रालोक में श्री अभिनवगुप्त जी भी कहते हैं—

‘तेन संवित्तिमुकुरे.....’

बोधसुधाब्धि में प्रविष्ट होने के लिए स्वच्छन्दतन्त्र में उपायों की प्रक्रिया सुचारु रूप से वर्णित है। इस शास्त्र के कालाध्वा प्रकरण में प्राणापान का अभ्यास मार्मिक रूप से किया गया है। एक ही प्राणापान के संचार में एक ‘चषकांश’ से लेकर साठ वर्षों की कलना की गई है। जिस के फल-स्वरूप योगी काल की परिधि का उल्लंघन करके अकालकलित हो जाता है। उत्पलदेव जी ने भी इस अवस्था का संकेत निम्नलिखित श्लोक में किया है—

‘न सदा न तदा न चैकदा.....’

इस के अतिरिक्त इसी प्राणापान के संचार में उत्तरायण, दक्षिणायन, सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण विषुवत् तथा अभिजित् आदि काल की स्थिति का भी प्रदर्शन किया गया है। यह शैवयोग केवल प्रातः सायं किसी निश्चित स्थान में आसन लगा कर नियमित रूप में नहीं किया जाता, अपितु दैनिक जीवन के प्रत्येक दशा में, शरीर की प्रत्येक चेष्टा में, प्राणापान की एक एक तुट्टि में तथा जाग्रत स्वप्न के मध्य में सजग रह कर ही किया जाता है।

प्रसिद्ध विज्ञान भैरव तंत्र में ११२ तांत्रिक धारणाओं का सुन्दर विवरण दिया गया है। उन सभी धारणाओं के लिखने का वास्तविक प्रयोजन यही है कि साधक किसी-न-किसी उपाय का आश्रय लेकर मध्य-धाम में प्रविष्ट हो॥



शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकंठ गुर्दू

संवृत-निर्देश—प्राचीन सिद्ध गुरुओं की लेखनशैली में अत्यन्त रहस्यमय एवं उच्चकोटि के दार्शनिक विचारों या सिद्धान्तों का, गूढ़ तात्पर्य वाले सूत्रात्मक शब्दों में, निर्देश करने की शैली को संवृतनिर्देश कहते हैं।

विवृत-निर्देश—उन्हीं कूट शब्दों में अभिव्यक्त किए एक सिद्धान्तों का सीधे सादे शब्दों में विश्लेषण प्रस्तुत करके उनके गूढ़ तात्पर्यों को सरल शब्दों में प्रस्तुतीकरण की शैली को विवृतनिर्देश कहते हैं।

निरोध—शैव या शैवेतर ग्रन्थों में यह शब्द गहरे आवरण या आड के अभिप्राय को द्योतित करता है। शैव संदर्भ में भी आवरणमयी अख्याति (मायाशक्ति) को 'निरोधिका' यह नाम दिया गया है क्योंकि माया नामवाली परमात्मशक्ति का स्वभाव ही 'स्वरूपगोपन' होता है।

अभिलाप—अपने मनोभावों को भाषिक रूप में अभिव्यक्त करने की क्रिया को 'अभिलाप' कहते हैं। अभिलाप स्थूल ध्वनिरूप और सूक्ष्म विमर्शरूप भी होता है। सिद्ध पुरुषों के अनुसार परा-भूमिका पर अभिलाप का रूप सूक्ष्मातिसूक्ष्म 'अहं-स्पन्दन-मात्र' होता है जिस को दूसरे शब्दों में विमर्श या अहंविमर्श भी कहते हैं। अभिलाप को दूसरे शब्दों में 'शब्दन' भी कहते हैं। परा से वैखरी तक का समूचा वाणीप्रपञ्च अभिलापमय ही होता है।

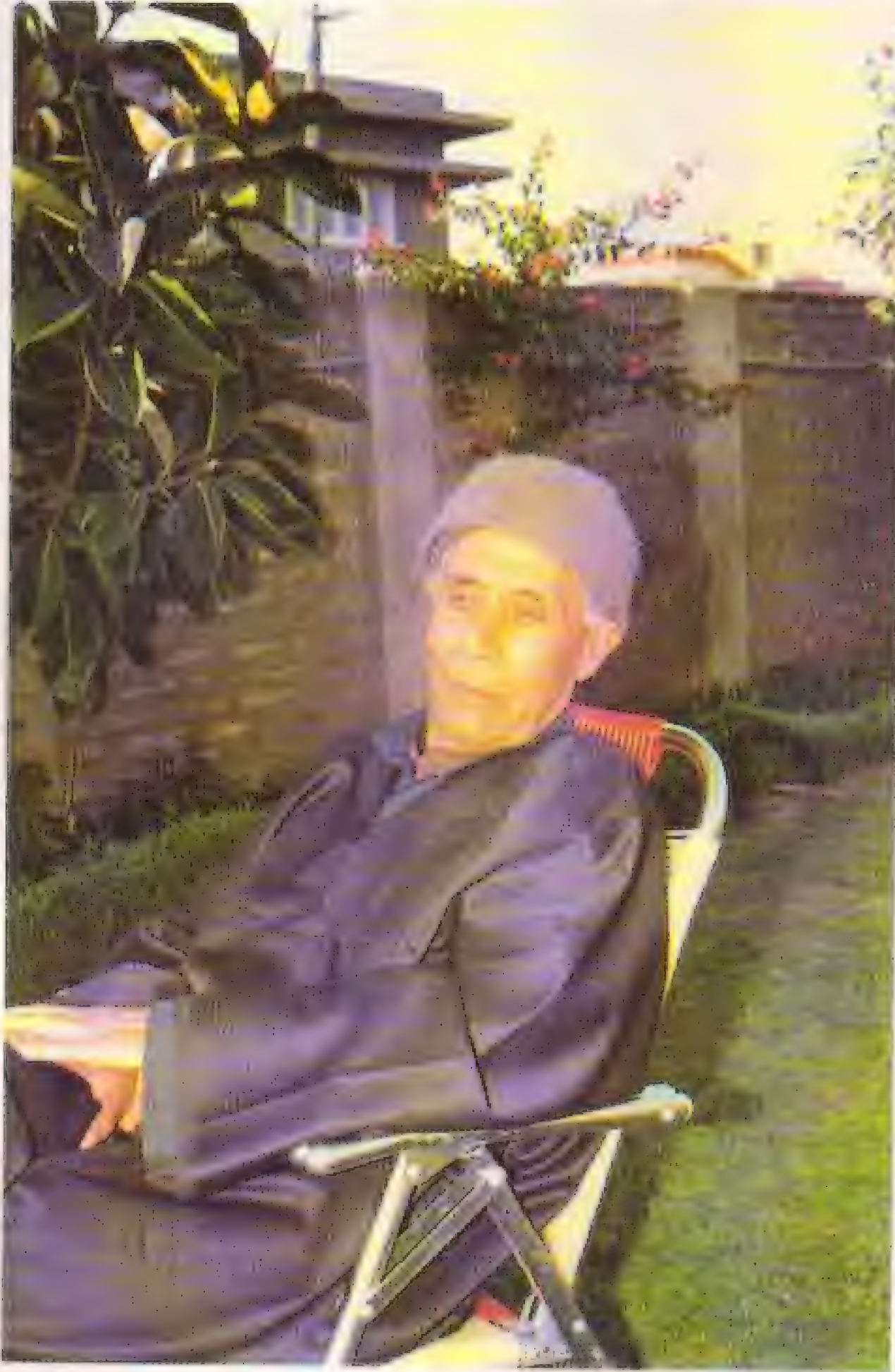
प्रकाश—यह शब्द समूचे प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का मूल आधार है। यह शब्द सार्वकालिक, सार्वदेशिक, नित्य, व्यापक, अपरिणामी, अविनश्वर इत्यादि स्वभावों वाले ईश्वरीय अवबोध की अभिव्यञ्जना करता है। विश्वोत्तीर्णा या विश्वमय दोनों भूमिकाओं पर जो कुछ भी जड या चेतन रूप में आभासमान है वह इसी 'प्रकाश' ईश्वरीय अवबोध का रूप विस्तार है। घट, पट, मानव, सुख इत्यादि प्रकारों के प्रमेय पदार्थ इसी मौलिक महाप्रकाश के अविभाज्य अंश हैं। एक तुच्छातितुच्छ घास का तिनका भी अपने स्थान पर प्रकाशकण ही है। अतः शैवसंदर्भ में घट, पट इत्यादि अनगिणत प्रमेय पदार्थ घट प्रकाश पट प्रकाश इत्यादि नामों से ही वाच्य होते हैं। निम्नलिखित प्रत्यभिज्ञाकारिका में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है—

एवमात्मन्यसत्कल्पाः प्रकाशस्यैव सन्त्यमी।

जडाः, प्रकाश एवैकः स्वात्मना स्वपरात्मभिः॥

अन्तेवासी—अध्यात्मिक या लौकिक दोनों स्तरों पर गुरुजनों से ज्ञान या शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्यों को 'अन्तेवासी' कहते हैं। 'विनय' यह शब्द भी अन्तेवासी का समानार्थक

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस

9-5-1907

महासमाधिदिवस

27-9-1991

है।

पर-स्पन्द—सर्वोत्कृष्ट परमशिव भूमिका पर स्वयं-सिद्ध रूप में चलते रहने वाले विकल्पहीन विमर्शमय स्पन्दन को 'पर-स्पन्द' (शाक्त स्पन्द) कहते हैं, और संसार भूमिका पर प्रत्येक पदार्थ या प्राणी के अंतस् में चलते रहने वाले विकल्पमय मानसिक स्पन्द को 'अपर-स्पन्द' कहते हैं। स्पन्द के इन दोनों रूपों को क्रमशः सामान्य-स्पन्द और विशेष-स्पन्द भी कहते हैं।

अनाशा—जिस किसी पदार्थ की उपलब्धि होने की कतई कोई संभावना न हो, उसी की उपलब्धि की आशा लेकर पड़े रहने को 'अनाशा' कहते हैं।

निरुत्थान—जिस किसी पदार्थ या भाव के अस्तित्व में आने का कोई उपयुक्त आधार ही उपलब्ध न हो उसको निरुत्थान कहा जाता है।

अन्वय-व्याप्ति—किसी एक पदार्थ के सद्भाव में ही किसी दूसरे पदार्थ के अस्तित्व में आने की अवस्था को 'अन्वय-व्याप्ति' कहते हैं जैसे बादलों के सद्भाव में ही वर्षा का सद्भाव।

व्यतिरेक-व्याप्ति—किसी पदार्थ का असद्भाव होने की दशा में किसी दूसरे पदार्थ का भी असद्भाव होने की अवस्था को व्यतिरेक-व्याप्ति कहते हैं जैसे आकाश में बादल न होने पर वर्षा का भी अभाव।

जीवन—जीवन अपने स्थान पर एक क्रिया है, फलतः इस क्रिया के कर्तव्य को जीवन कहा जाता है।

ज्ञान एवं क्रिया (ज्ञातृता और कर्तृता) का अविराम स्पन्दन ही इस जीवन क्रिया का रूप है। फलतः जो जीवन क्रिया को जानने वाला और सम्पन्न करने वाला प्रमाता हो उसी को जीवित प्रमाता कहते हैं। जीवित प्रमाता ईश्वरीय ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति के अलक्ष्य प्रभाव से ही इस क्रिया को (जीवन क्रिया को) संपन्न कर लेता है।

प्रह्वता—सच्चे साधक के निर्मल अंतस् में पाई जाने वाली श्रद्धा-भक्ति से ओत-प्रोत नम्रता, जिसके द्वारा वह अपनी काया, वाणी एवं चित्त तीनों का, अपने नमस्करणीय आराध्य देवता के साथ, पलक भर में, तादात्म्य-संबंध स्थापित कर लेता है, 'प्रह्वता' कहलाती है।

अर्थसंक्रमण—जिस भाग्यशाली पुरुष पर परमात्मा का तीव्रतम शक्तिपात हो उसके अंतस् में शैवशास्त्रों में वर्णित रहस्यार्थों की स्फुरणा स्वतः सिद्ध रूप में हो जाती है—उसी अवस्था को अर्थसंक्रमण कहते हैं।



शैवाचार्य श्री नागार्जुनरचित चित्तसन्तोषत्रिंशिका

वी. एन. जोशी (भट्ट)

(गतांक से आगे)

अप्रच्छतामियमनादि-धन-प्रबोध
स्नेहानुबिद्ध हृदयात् हृदयाद्यमाया।
संसेव्यतां सुभग शैवपद प्रवेश-
संप्राप्त दुर्लभ महोदय मुक्तिलक्ष्मीः॥ २२॥

अर्थ:—हे मन! प्रेम से, बँधे हृदय से अब इस अनादिधन प्रबोध अर्थात् अद्वय ज्ञान रूपी धन प्राप्ति से उजागर हृदय वाली माया से पूछा जावे कि क्यों अब तुम्हारा यह हाल हुआ है। अब तू दुर्लभ महा उदय स्वरूप शिवस्थान में प्रवेश करने से सुन्दर मोक्ष लक्ष्मी के संयोग का सेवन करे॥ २२॥

किं ब्रूमहेऽत्र भवते सुकृतेन सत्ये
सर्वाशिषामविषये ननु वर्तसे त्वम्।
यत्कारणातिगत निर्मल निर्विकल्पे
स्वच्छन्द शङ्कर पदे भजसेऽनुरागम्॥ २३॥

अर्थ:—हे मन! आप सत्य हो, तुम्हारे पुण्य कर्म का हमारे पास कहने के योग्य क्या है। आप सभी आशीर्वादों के अगोचर भाव को निश्चय से प्राप्त हुए हो। क्योंकि आप (सब ब्रह्मा इत्यादि) कारणों से भी अतीत निर्मल निर्विकल्प स्वच्छन्द भगवान् शङ्कर के चरण कमलों के अनुराग का सेवन करते हो॥ २३॥

चित्रं यदेतदसमं यदभूत् सुखेषु
प्राप्तेषु निर्वृत्ति दशामनुवर्तमानम्।
दुःखेषु दुस्सहतरेष्वपि चित्तमद्य
पूर्णप्रमोदरस निर्भरमेतदास्ते॥ २४॥

अर्थ:—अत्यन्त आश्चर्य है कि जो यह मन सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति पर भी वास्तविक सुख अर्थात् आनन्द प्राप्ति की तलाश में फिरा करता था वही यह मन अब दुःसह दुःखों के आने पर भी सम्पूर्ण आनन्द रस से भरा हुआ रहता है॥ २४॥

विश्वं निगीर्य सहसा कवलं विधाय
कालं प्रशान्त गगनोपम दिव्य मूर्तिः।

या राजते निरुपमामृतपूरपूर्णा

सा कापि खेचरगतिर्जयति त्वदीया॥ २५॥

अर्थ:—हे चित भगवती! आपने सारे जगत को ग्रास किया है। महाकाल को भी सहसा एक कौर बनाकर ग्रास किया है। आप अत्यन्त शान्त आकाश के समान अलौकिक मूर्ति हो। उपमा रहित अलौकिक अमृत से परिपूर्ण चमकती हो। आप उत्कृष्ट आकाश रूप व्यास मूर्ति का जयजयकार हो॥ २५॥

ते कारणाधिपतयः प्रलयं प्रयान्ति

यस्मिन्महावटतटे विषमे गंभीरे।

शक्तिर्निजं वपुरपि प्रसभं जहाति

तद्धाम संश्रयसि वीरवर त्वमेकम्॥ २६॥

अर्थ:—हे मन! ब्रह्मा इत्यादि अधिपति जिस महाकठिन गहरी खाई में नाश को प्राप्त हुए हैं और शक्ति भगवती अपने स्वरूप वेग को भी वहां से ही उत्पन्न करती है, हे वीरवर! आपने उसी शिवधाम में आश्रय ले लिया है॥ २६॥

विद्युद्विलास चपले विभवे नताङ्गी

भूभङ्गभङ्गुरतरेऽपि च जीवितेऽस्मिन्।

चित्त! त्वयैव विजितं श्रयताविनाशि

दिग्देशकालकलनारहितं पदं तत्॥ २७॥

अर्थ:—हे मन! बिजली की चमक के समान चंचल वैभव वाली नर्तकी के भौहों के इशारे के समान तत्काल नष्ट होने वाले इस जीवन में तुमने श्रेष्ठ अविनाशी, दिशा, देश, काल के विकल्पों से रहित स्थान जीत लिया है॥ २७॥

स्वस्त्यस्तुतेऽम्बर विकस्वर संप्रदाय

संप्राप्तशङ्करपदोदितसंमदाय।

दुर्वार संसृति दशास्वपि निर्विकार

नित्योदितात्म विभवाय भवाभवाय॥ २८॥

अर्थ:—हे मेरे मन! तुम को स्वात्म स्वरूप में स्थिर स्थिति हो। तुम चमकते हुए सम्प्रदाय वाले शङ्कर पद शिवधाम की प्राप्ति से उत्पन्न हुए हर्ष तथा कठिनता से नष्ट होने वाली संसार दशा से भी निर्विकार हो तुम नित्योदित आत्म वैभव से युक्त हो और भव और अभव (भोग

और मोक्ष) रूप हो॥ २८॥

स्वच्छन्दनिर्मलसदोदितनिर्निकेत
संवित्सुधारस चमत्कृति निर्भरोऽसि।
दिष्टयाद्य सदगुरु मुखाम्बजमद्य लब्ध्वा
नुर्च्याय चारुकथनोदयविस्मितोऽसि॥ २९॥

अर्थ:—आज हे मन! अहोभाग्य से श्री सदगुरु के मुख कमल में से उच्चारण रहित, सुन्दर चमकीला क्षण पाकर उसके उदय से अब तुम स्वतन्त्र निर्मल सदा उदित, निकेतन अथवा चिह्न रहित संवित् स्वरूप अमृत रस की चमत्कृति से परिपूर्ण और आश्चर्यमय हो॥ २९॥

भव मरु भुवि श्रान्तो मोहात् य एष मनोऽध्वगो
विषय विषय प्रोद्यत्तृष्णा निवेश वशीकृतः।
शिवपदसुधासिन्धु दैवादवाप्य ससादरं
किमपि सुखितो मज्जं मज्जं निमज्जति सांप्रतम्॥ ३०॥

अर्थ:—संसार रूपी मरुस्थल पर मोह रूपी अन्धकार में थका हुआ यह मन रूपी यात्री कठिन विषयों से उत्पन्न हुई तृष्णा के आवेश से परवश, शिव धाम के अमृत सागर को आदर के साथ पाकर दैवी अनुग्रह से उसमें धीरे-धीरे डुबकी लगाकर अब कितना सुखी बन रहा है॥ ३०॥

निरावरण चिद्वचोम
परमामृत निर्भरः।
नागार्जुनो व्यधादेनां
चित्तसंतोषत्रिंशिकाम्॥ ३१॥

अर्थ:—मल रहित चित आकाश परमामृत से पूरित (श्री) नागार्जुन नामी आचार्य ने यह चित्तसंतोषत्रिंशिका बनाई है।

इति विपचिद्वर-नागार्जुन रचिता चित्तसन्तोषत्रिंशिका॥



ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office:

Ishber, Nishat,
Srinagar - 190 021
(Kashmir)

Administrative Office :

2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi) - 180 002
Tel - 555755

Delhi Office :

Sarita Vihar,
New Delhi - 110 044
Tel - 6943307
Telefax - 6955611

Place Jammu

1.

Dated 13.4.2000

The disciples and the devotees besides the members of the Trust were deeply shocked to learn about the sad demise of Shriyut Madhusudan Ji Koul (of Chandigarh) our guru brother.

The death being inevitable, one can only pray for the peace of the departed soul.

The Guru-parivar pray to Gurudeva for the upliftment of his soul and bestowing courage to his family to bear this tremendous loss.

2.

Dated 30.8.2000

The Trust members and the devotees of Swami Ji Maharaj, were very much shocked to hear the demise of Smt. Kamlavati Ambardar, our guru sister and mother of Shantaji Kukiloo and mother in-law of Prof. M.L. Kukiloo.

Kindly convey heartfelt condolences to Shanta Ji from all of us. Assembled devotees on 27.8.2000 also requested the trust to express their heartfelt condolences to Mrs. and Mr. Kukiloo.

May Gurudeva bestow peace to the departed soul and shower bliss to the same.

3.

Dated 15.9.2000

The Members of the trust, present at Jammu, and whole of the Guru-parivar, assembled in connection with the Jag of Swami Mehtab Kak Ji, were shocked to learn about the sad demise of Shri S.N. Kak, father of Shri G.L. Kak, Pamposh Enclave, New Delhi (guru brother and a member of the Guru-parivar).

“All prayed to Gurudeva for the upliftment of the departed soul and for bestowing courage to his family members to bear this irreparable loss.”

Closing with at most condolences

Sd/-

B. N. Kaul (Trustee),
For Ishwar Ashram Trust

Similar condolence meetings were held at Srinagar Ashram and at Delhi Ashram.

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs. 80.00

Price Per Copy : Rs. 20.00

Overseas Subscription : US\$25.00

*All correspondence & subscription
must be sent to the Administrative Office :*

Ishwar Ashram Bhawan

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180 002.

Phone : 555755, 553179

Information regarding printing & publishing etc.

can be had from

Branch Office

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044.

Phone : 6943307

LIST OF BOOKS / PUBLICATIONS

1. Kashmir Shaivism-Secret Supreme by Swami Lakshman Joo (English)	120
2. Trikshastra-Rahasya-Prakriya by Swami Lakshman Joo (Hindi)	140
3. Sri Bhagavad Geeta with Abhinavagupta's Sanskrit commentary and Hindi translation by Swami Lakshman Joo & Smt. Prabha Devi.	100
4. Tantralok with Hindi translation by Swami Lakshman Joo	20
5. Bhagvadgita with Sanskrit commentary by Abhinavagupta and notes etc by Swami Lakshman Joo Maharaj	75
6. Vatulanatha Sutra with English translation by Swami Lakshman Joo	20
7. Kundalini Vigyan Rahasyam by Swami Lakshman Joo (English)	20
8. Swami Lakshman Joo ki Jeevani by Smt. Prabha Devi	5
9. Bhavarchan by Smt. Prabha Devi	51
10. Sharika Bodh by Sacchidanand	25
11. Sarika Charcha-Rameshwar Jha; with Hindi translation by Prof. M.L. Kukiloo.	25
12. Shraddharchan	150
13. Sandhyopasana Vidhi by Swami Lakshman Joo	20
14. Amriteshwar Bhairav Puja edited by Swami Lakshman Joo	free
15. Sri Amriteshwar Bhairav Stuti with Hindi translation by Prof. M.L. Kukiloo.	10
16. Parapraveshika with Hindi translation by Prof. N.K. Gurtoo & by M.L. Kukiloo.	20
17. Astottar Satanamavali of Sri Gurudev by Prof. M.L. Kukiloo.	5
18. Kashmiri Shaivadarshan - Yam/Niyam, by Swami Lakshman Joo with Hindi Translation by Prof. M.L. Kukiloo.	20
19. Maans Khana Pap Hai (Lecture in English/Hindi translation) by Prof. M.L. Kukiloo	5
20. Sharika Ashtottar Shat Namavali by Prof. M.L. Kukiloo.	10
21. Shri Gurustuti. (New revised edition) in Sanskrit	35
22. Sahaj Vichar Part I (A Collection of Kashmiri Poems) by Pt. Dina Nath Ganjoo.	10
23. Sahaj Vichar Part II (containing Kashmiri trans. of Shiv Sutra etc.) by Sh. D.N. Ganjoo.	35
24. Sahaj Vichar Part III English translation of Shivastotravali by Sh. D.N. Ganjoo	150
25. An Introduction of Kashmir Shaivism by Sh. D.N. Ganjoo	30
26. Amarnath yatra (Kashmiri) edited by Smt. Prabha Devi	10
27. Pajar Pajraw (Kashmiri) By Sh. J. N. Koul Kamal	10
28. Samb Panchashika with Hindi translation by swami Lakshman Joo	25
29. Awakening of Supreme Consciousness (English) (A collection of Swami Lakshman Joo's lectures edited by Sh. J.N. Koul Kamal	75
30. Atam Jan (Kashmiri) by Smt. Raj Dulari Kadalbujoo	25
31. "Malini" a set of 18 issues	350
32. Bhawani Sahasranam (Published by Ram Krishan Ashram, Srinagar) with English commentary by Sh. J.N. Kaul Kamal	75
33. Practice and Displine of Kashmir Shaivism (English) by Swami Lakshman Joo (new edition)	35
34. Pancastavi with Hindi translation by Swami Lakshman Joo	50
35. Shivastotravali with Sanskrit comm. & Hindi translation by Swami Lakshman Joo (revised edition)	225